नई दिल्ली
रविवार, 29 मार्च, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-23 पृष्ठ- 12
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

असम, केरला, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में चुनावों के जमीनी हालात 2,3
मार्च में दिसंबर जैसे मौसम से खुश न हों 6

एडवर्टोरियल
असम 7-11

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

मोदी की ईरान नीति 'रणनीतिक समर्पण'

अमेरिकी दबाव में चाबहार को दरकिनार कर भारत ने अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' पर खुद ही कुल्हाड़ी मार ली

गुरदीप सिंह सप्पल

कूटनीति को जब अपना यह नाम नहीं मिला था, उससे बहुत पहले से ही भारत और ईरान संवाद में थे। सिंधु घाटी का प्राचीन फ़ारस के साथ लाजवर्द (लैपिस लाजुली) और हाथीदांत का व्यापार था। संस्कृत और अवेस्ता भाषाओं की जड़ें एक ही हैं। भारत की अदालतों, जमीन के रिकॉर्ड, संगीत और हिन्दी भाषा पर आज भी फ़ारसी असर दिखता है। इसीलिए, नरेन्द्र मोदी सरकार द्वारा ईरान को अचानक छोड़ देना न सिर्फ विदेश नीति की विफलता; बल्कि एक 'सभ्यतागत विश्वासघात' भी है, जिस पर न कोई विचार हुआ, न कोई घोषणा हुई। यह भी नहीं कि तेहरान या भारत की जनता को इसका कोई स्पष्टीकरण दिया जाता।

भारत और ईरान के बीच मतभेद रहे हैं, लेकिन पहले कभी ऐसा नहीं देखने में आया कि कूटनीतिक माध्यमों को दरकिनार करते हुए दोनों देशों के रिश्तों को इस तरह अचानक और गुपचुप, एकदम नए तरीके से परिभाषित किया गया हो। 1947 में भारत की आजादी से एक ढांचागत विभाजन पैदा हुआ। ईरान, जो भारत का एकदम पड़ोसी था, अब उसकी सीमाएं भारत से दूर हो गई थीं; पाकिस्तान इन दोनों देशों के बीच आ गया था।

शाह का ईरान पूरी तरह पश्चिमी खेमे में था, जबकि जवाहरलाल नेहरू का भारत गुटनिरपेक्ष। ईरान-इराक युद्ध में जब भारत ने इराक का साथ दिया, दोनों देशों के रिश्ते और बिगड़ गए। हैरानी यह कि 1979 में खोमैनी की इस्लामी क्रांति ने ही इन रिश्तों के लिए फिर दरवाजा खोला। अब दोनों ही देश अमेरिका के रणनीतिक प्रभाव क्षेत्र से बाहर थे, और दोनों के पास ही पाकिस्तान की बढ़ती क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं को चिंता के साथ देखने के अपने-अपने कारण थे।

भारत और ईरान के रिश्ते फिर से मजबूत करने में अफगानिस्तान की भी भूमिका रही। 1996 से 2001 के बीच जब अफगानिस्तान में तालिबान अपनी सत्ता जमा रहा था, भारत और ईरान इस लड़ाई में एक ही पाले में खड़े थे। पाकिस्तान की मिलिट्री इंटेलिजेंस एजेंसी आईएसआई तालिबान की मुख्य समर्थक थी। भारत और ईरान ने रूस के साथ मिलकर 'नॉर्दर्न अलायंस' को राजनीतिक समर्थन, आर्थिक मदद और हथियार मुहैया कराए। यह महज कागजी बयानों या संयुक्त घोषणाओं की कूटनीतिक चमक-दमक वाली साझेदारी नहीं थी; बल्कि साझा दुश्मनों और आपसी हितों पर आधारित ठोस एकजुटता थी।

1994 में, 1992 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस की पृष्ठभूमि में, पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में भारत के खिलाफ 'इस्लामिक सहयोग संगठन' (ओआईसी) को लामबंद करने की कोशिश की। ईरान ने ओआईसी की आम सहमति को रोक दिया और एक इस्लामी गणराज्य ने पाकिस्तान के बजाय भारत को चुना। तब से, तेहरान ओआईसी में नई दिल्ली की ढाल बना रहा है।

चाबहार, सीपीईसी और एक रणनीतिक जवाब

अफगानिस्तान में मची उथल-पुथल ने भारत को वह चीज वापस दिला दी, जो बंटवारे में उसके हाथ से निकल गई थी- यानी पाकिस्तान को दरकिनार करते हुए मध्य एशिया तक पहुंचने का रास्ता।

साल 2015 में, चीन ने 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे' (सीपीईसी) के जरिये भारत के पश्चिमी हिस्से में अपनी स्थायी जगह बना ली। उसने पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह को अपने समुद्री केन्द्र के तौर पर चुना और पूरे एशिया में चीन-केन्द्रित आर्थिक ढांचा खड़ा करने के लिए 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' (बीआरआई) की रूपरेखा बनाई; जिसका मकसद निर्भरता का ऐसा भरोसा उत्पन्न करना था जो सरकारों के बदलने के बाद भी न टूटे।

भारत का जवाब था चाबहार, जो पाकिस्तान की जमीन का एक भी मील पार किए बिना भारत को अफगानिस्तान तक सीधी पहुंच देता है। इससे भी ज्यादा अहम बात यह कि चाबहार 7,200 किलोमीटर लंबे मल्टी-मॉडल नेटवर्क, इंटरनेशनल नॉर्थ-साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर (आईएनएसटीसी) का प्रवेश द्वार है, जो मुंबई को तेहरान और बाकू होते हुए मॉस्को से जोड़ता है। भारत, ईरान और रूस ने साल 2000 में आईएनएसटीसी समझौते पर दस्तखत किए थे। पूरी तरह चालू हो जाने पर, यह कॉरिडोर माल ढुलाई का समय 40 दिन से घटाकर 20 दिन कर देगा और ट्रांसपोर्ट की लागत में भी 30 प्रतिशत की कटौती हो जाएगी। इस तरह यह भारत को मध्य एशिया, रूस और यूरोप तक पहुंचने के लिए एक अहम व्यापारिक रास्ता देगा, जो पाकिस्तान और चीन के पसंदीदा रुकावट वाले पॉइंट्स को दरकिनार कर देगा।

चाबहार महज एक बंदरगाह नहीं है। यह भारत की विदेश नीति संरचना का ऐसा अहम हिस्सा है, जिसके जरिये वह चीन के सीपीईसी और बीआरई का जमीनी स्तर पर मुकाबला कर सकता है; यह भारत के लिए जाहिर करने का एक जरिया भी है कि वह चीन-पाकिस्तान गठजोड़ की वजह से जमीन से घिरा हुआ नहीं रहेगा। भारत की रणनीतिक सूची से बस चाबहार को हटा दीजिए, भारत अपनी पश्चिमी कनेक्टिविटी की बढ़त बीजिंग और इस्लामाबाद के हाथों हमेशा के लिए खो देगा, और इसका कोई विकल्प नहीं है।

इसीलिए, आने वाली हर सरकार चाबहार प्रोजेक्ट का समर्थन करती रही। 2012 में तेहरान की यात्रा के बाद, मनमोहन सिंह सरकार ने इसके विकास के लिए 100 मिलियन डॉलर देने का वादा किया। मोदी ने भी 2016 में तेहरान का दौरा किया और 'शहीद बेहेश्ती टर्मिनल' समझौते पर हस्ताक्षर किए। भारत ने मई 2024 में इस टर्मिनल का ऑपरेशनल कंट्रोल अपने हाथ में ले लिया। मोदी ने इसे एक ऐतिहासिक उपलब्धि बताया, और यह वाकई एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

'रणनीतिक स्वायत्तता' की एक मिसाल...

जब 2011-12 में अमेरिका और यूरोपीय संघ ने ईरान पर कड़े प्रतिबंध लगाए और ईरानी बैंकों को वैश्विक डॉलर प्रणाली से अलग कर दिया, तब डॉ. मनमोहन सिंह ने दिखाया कि एक संप्रभु विदेश नीति कैसी होती है। उन्होंने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि प्रतिबंधों के बावजूद भारत ईरान से तेल का आयात जारी रखेगा, और इसके बाद उन्होंने तेहरान के लिए एक व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल भेजने की घोषणा कर दी।

मार्च 2012 में, ईरानी बैंकों को 'स्विफ्ट' फाइनेंशियल मैसेजिंग नेटवर्क से अलग कर दिया गया था, जो अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग लेन-देन की एक वैश्विक प्रणाली है। डॉ. सिंह ने यूको बैंक के जरिये 'रुपया-रियाल भुगतान तंत्र' बनाकर इस कदम को चुनौती दी। इसके तहत तेल का लेन-देन पूरी तरह डॉलर प्रणाली से बाहर और वॉशिंगटन की पहुंच से दूर रखा गया। इससे जो अतिरिक्त राशि जमा हुई, उसका इस्तेमाल भारतीय निर्यातकों को अरबों रुपये का बकाया भुगतान निपटाने के लिए किया गया। बाद में, जब 2022 के बाद भारत को रूस के साथ व्यापार की जरूरत पड़ी, तो यही वित्तीय ढांचा काम आया।

मनमोहन सिंह की ईरान नीति ने भारत की, प्रतिबंधों का सामना करने में सक्षम व्यापार प्रणाली का बुनियादी ढांचा तैयार किया।

पश्चिमी देशों का दबाव चरम पर होने के बावजूद, उन्होंने अगस्त 2013 में राष्ट्रपति रूहानी के शपथ ग्रहण समारोह में शामिल होने के लिए, तत्कालीन उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी (जो तेहरान में पूर्व राजदूत रह चुके थे) को भेजा। बिना किसी शब्द के संदेश बहुत स्पष्ट था- भारत ने ईरान का साथ नहीं छोड़ा है। रणनीतिक स्वायत्तता इसी को कहते हैं।

...और मोदी का पूर्ण समर्पण

2019 में, ट्रंप के दबाव के आगे झुकते हुए, भारत ने ईरान से कच्चे तेल का सारा आयात रोक दिया। उस समय ईरान भारत का दूसरा सबसे बड़ा तेल सप्लायर था, और भारत की कुल तेल खरीद में उसका हिस्सा 16.5 प्रतिशत था। ईरानी तेल के साथ माल ढुलाई में छूट, भुगतान की अनुकूल शर्तें और डॉलर के अलावा अन्य मुद्राओं में भुगतान की सुविधा मिलती थी; इसे छोड़ने से भारत को अरबों का नुकसान हुआ। फिर भी, चाबहार परियोजना अपने तय रास्ते पर चलती रही और दोनों देशों की दोस्ती भी कायम रही। हाल ही में 25 फरवरी 2026 को, ईरान ने विशाखापत्तनम में आयोजित भारत के 'मिलन 2026' नौसैनिक अभ्यास में भी हिस्सा लिया।

26 फरवरी को जब प्रधानमंत्री मोदी इसराइल गए, तो सब कुछ बदल गया। दो दिन बाद, जब ईरान के खिलाफ अमेरिका-इसराइल का युद्ध शुरू हुआ, भारत के रुख में एक स्पष्ट बदलाव देखने को मिला। उसने ईरान की संप्रभुता के उल्लंघन की निंदा नहीं की। उसने ईरान के सर्वोच्च नेता की हत्या पर शोक नहीं जताया। 'मिलन 2026' युद्धाभ्यास से लौट रहे ईरानी युद्धपोत 'आईआरआईएस देना' को जब श्रीलंका के समुद्री क्षेत्र में एक अमेरिकी पनडुब्बी ने टॉरपीडो से निशाना बनाया, तब भारत की प्रतिक्रिया महज 'मानवीय खोज और बचाव' तक सीमित रही। भारत का एक मेहमान, भारत की ही चौखट पर हमले का शिकार हुआ, लेकिन भारत ने उससे आंखें फेर लीं। यह भारत की नीति नहीं थी।

अमेरिकी दबाव में आकर, मोदी सरकार ने 2026-27 के केन्द्रीय बजट में चाबहार के लिए फंडिंग शून्य कर दी। ईरान के साथ भारत का द्विपक्षीय व्यापार गिरकर 1.68 अरब अमेरिकी डॉलर पर आ गया। चाबहार में किया गया भारत का बुनियादी ढांचा निवेश एक बेकार संपत्ति बनने के जोखिम में है, जिसे चीनी या रूसी ऑपरेटरों को सौंपा जा सकता है। जो बंदरगाह भारत ने चीन से मुकाबले के लिए बनाया था, संभव है अंततः उसका संचालन चीन को ही मिल जाए।

मोदी के इस अचानक घुटने टेक देने का मतलब है कि भारत अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक पहुंचने का अपना एकमात्र स्वतंत्र स्थलीय प्रवेश द्वार खो देगा। अरब सागर से लेकर कैस्पियन सागर तक फैला पूरा आईएनएसटीसी कनेक्टिविटी गलियारा इसकी चपेट में आ गया है।

अमेरिका ने यह खुला संकेत दिया है कि रूसी तेल खरीदने के लिए भारत को उसकी अनुमति की जरूरत है। समझना होगा कि यह किसी उभरती हुई शक्ति की विदेश नीति नहीं है; यह तो किसी आश्रित राष्ट्र की विदेश नीति है।

अब अगर भारत ईरान का साथ छोड़ देता है, तो वह चीन के 'बेल्ट एंड रोड' के मुकाबले अपने एकमात्र भौगोलिक, बुनियादी ढांचागत और रणनीतिक विकल्प को खो देगा। यह एक रणनीतिक 'सेल्फ-गोल' साबित होगा, और इतिहास इसे इसी रूप में दर्ज करेगा। ■

> भारत अगर ईरान का साथ छोड़ देता है, तो वह चीन के 'बेल्ट एंड रोड' के मुकाबले अपने एकमात्र भौगोलिक, बुनियादी ढांचागत और रणनीतिक विकल्प से हाथ धो बैठेगा। यह एक रणनीतिक 'सेल्फ-गोल' साबित होगा, और इतिहास इसे इसी रूप में दर्ज करेगा

गुरदीप सिंह सप्पल कांग्रेस कार्यसमिति के स्थायी आमंत्रित सदस्य हैं

हम चुकाएंगे उनकी जंग की कीमत

हरजिंदर

मार्च बीतने से पहले ही कोंकण के बागानों में पक रहे अल्फांसो आमों की खुशबू फैलने लगती है। महाराष्ट्र, गुजरात और तटीय कर्नाटक के कुछ हिस्सों में आम के मौसम का आगमन खुशहाली का संकेत माना जाता है। निर्यातक खाड़ी देशों के लिए पैकेजिंग में जुट जाते हैं। किसान अच्छे दामों की उम्मीद करते हैं। आढ़तियों के पास तो खैर बात करने तक की फुरसत नहीं रहती।

लेकिन इस साल वहां उदासी दिख रही है। युद्ध ने सारे अरमानों पर पानी फेर दिया है। गल्फ कोऑपरेटिव कौंसिल के देश भारतीय आमों के सबसे बड़े खरीदार हैं। 2024 में भारत ने इन देशों को लगभग 12,000 मीट्रिक टन आम निर्यात किए थे। इस वर्ष ऑर्डर लगभग गायब हैं। सूरत के एक फल निर्यातक के शब्दों में- "अब तक आम का एक भी ऑर्डर नहीं मिला है। सच कहूं तो कम-से-कम अगले एक महीने तक कोई उम्मीद भी नहीं दिख रही है।"

जो किसान निर्यात के लिए आम नहीं उपजाते हैं, वे भी उतने ही चिंतित हैं। उनका कहना है कि जैसे ही निर्यात की मांग गिरती है, घरेलू बाजार में फलों की अधिकता हो जाती है और कीमतें मुंह के बल गिरती हैं।

आम का मौसम तो खैर अभी पूरी तरह शुरू नहीं हुआ, लेकिन तरबूज उगाने वाले किसानों पर युद्ध की मार पड़ चुकी है। 2023 के निर्यात आंकड़े बताते हैं कि भारत ने खाड़ी क्षेत्र में लगभग 2.2 लाख किलोग्राम तरबूज भेजे थे। रमजान के महीने में तो इसकी मांग सबसे अधिक होती है। इस साल रमजान आया और गुजर गया, लेकिन कोई खेप नहीं भेजी गई।

किसानों के लिए यह व्यवधान एक झटके की तरह आया है। एक किसान नेता ने संडे नवजीवन को बताया कि हम अभी नए भारत-अमेरिका व्यापार समझौते के प्रभाव को समझने की कोशिश ही कर रहे थे कि युद्ध ने अलग ही समस्याएं खड़ी कर दीं।

खाड़ी क्षेत्र केवल फलों का बाजार ही नहीं है। यह बासमती चावल, चाय, मसालों और प्रोसेस्ड खाद्य उत्पादों के सबसे बड़े खरीदारों में से एक है। इसलिए यदि लंबा व्यवधान आता है तो कृषि आपूर्ति श्रृंखला से जुड़े लाखों किसानों और मजदूरों पर इसका असर पड़ सकता है।

कृषि उत्पाद पूरी कहानी का एक हिस्सा हैं। खाड़ी क्षेत्र भारत के रत्न और आभूषण उद्योग के लिए भी एक बड़ा बाजार है, जिसमें सूरत और मुंबई जैसे शहरों में लाखों लोग काम करते हैं। युद्ध जारी रहता है तो मांग में तेज गिरावट आ सकती है। दवा कंपनियां भी चिंतित हैं। उद्योग के अनुमान बताते हैं कि व्यापार बाधित रहा तो भारत से थोक दवाओं का निर्यात 20 से 30 प्रतिशत तक गिर सकता है। नौकरियों पर भी इसका असर पड़ना लगभग तय है। निर्यात कारोबार में आमतौर पर बड़ी संख्या में ठेका मजदूर और छोटे आपूर्तिकर्ता जुड़े होते हैं। निर्यात घटता है तो कारोबार की पहली प्रतिक्रिया अक्सर लागत घटाने की होती है, जिसमें छंटनी या काम के घंटे कम करना शामिल होता है। इसका परिणाम बेरोजगारी में वृद्धि के रूप में सामने आ सकता है। पूर्णकालिक और अंशकालिक दोनों तरह के श्रमिकों के लिए, खासकर ग्रामीण इलाकों और असंगठित क्षेत्र के उन कामगारों के लिए जिनकी माली हालत पहले से ही कमजोर है।

> तात्कालिक संकट प्राकृतिक गैस का है। अगर युद्ध की स्थिति लंबी खिंचती है, तो ऊर्जा की लागत तेजी से बढ़ सकती है जिससे ट्रांसपोर्ट, घरेलू खर्च और विनिर्माण प्रभावित होंगे

युद्ध भारतीय कृषि के लिए एक बहुत खतरनाक संकट भी पैदा कर रहा है- उर्वरकों का संकट। भारत अपनी उर्वरक आवश्यकताओं का बड़ा हिस्सा आयात करता है, खासकर फॉस्फेटिक उर्वरक जैसे डाई-अमोनियम फॉस्फेट (डीएपी)। हाल के हफ्तों में अंतरराष्ट्रीय बाजार में डीएपी की कीमत तेजी से बढ़ी है। 665 डॉलर प्रति टन से बढ़कर मात्र दो हफ्तों में 730 डॉलर प्रति टन से अधिक हो गई है। भारत को खरीफ बुवाई के मौसम से पहले बड़ी मात्रा में उर्वरक जमा करना होता है। इस बार यह आसान नहीं है।

सरकार सब्सिडी के जरिये डीएपी का खुदरा मूल्य 50 किलो की बोरी पर 1,350 रुपये पर स्थिर रखती है, लेकिन असली समस्या उपलब्धता की है। आयात में देरी या आपूर्ति में कमी से किसानों को यूरिया पर अधिक निर्भर होना पड़ सकता है, जिससे मिट्टी में पोषक तत्वों का असंतुलन पैदा होगा और फसल की पैदावार घट सकती है।

ऊर्जा आयात वैश्विक संघर्ष के दौरान भारत की शायद सबसे बड़ी कमजोरी है। देश अपनी कच्चे तेल की जरूरत का लगभग 85 प्रतिशत आयात करता है, और कीमतों में तेज वृद्धि का सीधा असर महंगाई और चालू खाते के घाटे पर पड़ता है। अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि कच्चे तेल की कीमत में हर 10 डॉलर की बढ़ोतरी भारत के चालू खाते के घाटे को लगभग 9 अरब डॉलर तक बढ़ा सकती है।

फिलहाल सरकार ने संसद को आश्वस्त किया है कि भारत के पास पर्याप्त पेट्रोलियम भंडार हैं। हालांकि स्थिति अनिश्चित बनी हुई है। अमेरिका से मिली अस्थायी छूट ने भारत को सीमित अवधि तक रूस से तेल खरीदना जारी रखने की अनुमति दी है, लेकिन ऐसे इंतजाम उन फैसलों के भरोसे रहेंगे जो भारत के नियंत्रण से बाहर हैं।

यदि युद्ध लंबा खिंचता है तो ऊर्जा की लागत तेजी से बढ़ सकती है, जिससे परिवहन, विनिर्माण और घरेलू खर्च सभी प्रभावित होंगे।

तात्कालिक संकट प्राकृतिक गैस का है। भारत तरलीकृत पेट्रोलियम गैस (एलपीजी) और तरलीकृत प्राकृतिक गैस (एलएनजी) के आयात पर काफी निर्भर है। इनकी बड़ी मात्रा होर्मुज जलडमरूमध्य से होकर गुजरती है, जो विश्व ऊर्जा व्यापार का एक महत्वपूर्ण समुद्री मार्ग है। वहां कोई भी व्यवधान भारत में रसोई गैस, सीएनजी परिवहन ईंधन और औद्योगिक गैस आपूर्ति को प्रभावित कर सकता है।

शेष पेज 2 पर ▸

क्या बदलाव के लिए लोग तैयार हैं?

सौरभ सेन

राज्य कांग्रेस प्रमुख और सांसद गौरव गोगोई का कहना है कि 'असम में राजनीति इतनी नफरत भरी कभी नहीं रही।' उनका कहना है कि सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति में नए मानक स्थापित करने वाला यह पूर्वोत्तर राज्य अब बदलाव के लिए तैयार है।

असम में 9 अप्रैल को 126 सदस्यीय विधानसभा के चुनाव होंगे। मतगणना 4 मई को होगी, इसलिए परिणाम लगभग एक महीने बाद ही पता चलेंगे। 2021 में हुए पिछले विधानसभा चुनावों में राज्य में 82.5 प्रतिशत मतदान हुआ था।

चुनावों की गहमागहमी के समय हाई-प्रोफाइल दलबदल से प्रभावित हुए बिना गोगोई मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा की हानिकारक नीतियों को निशाना बनाने में लगे हुए हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस बार दलबदल एकतरफा नहीं है - चुनाव से कुछ ही सप्ताह पहले, भाजपा से कांग्रेस में भी दलबदल देखने को मिल रहा है।

कांग्रेस से दलबदल करने वाले प्रद्युत बोरदोलोई और भूपेन बोरा जैसे नए नेताओं को भी मैदान में उतारने के बिस्वा शर्मा के फैसले से नाराज होकर कई भाजपा नेताओं ने कांग्रेस का साथ दिया है। कुछ अन्य नेताओं ने निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ने का विकल्प चुना है, जिससे चुनावी समीकरण जटिल हो गए हैं। 11 पूर्व कांग्रेसी नेताओं के मैदान में होने से भाजपा के वरिष्ठ नेताओं में असंतोष चरम पर है।

भाजपा के बागी जयंता दास ने छुपकर स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में अपना नामांकन दाखिल कराया। उन्होंने मीडिया को बताया कि उन्हें सावधानी बरतनी पड़ी क्योंकि उन्हें डर था कि उन्हें रोका जा सकता है, पुलिस हिरासत में लिया जा सकता है और उन पर झूठे आरोप लगाकर नामांकन प्रक्रिया समाप्त होने के काफी बाद रिहा किया जा सकता है। दास ने चुटकी लेते हुए कहा कि यह पहली बार होगा जब किसी निर्वाचन क्षेत्र में कांग्रेस के दो उम्मीदवार होंगे। यहां से पूर्व कांग्रेस सांसद प्रद्युत बोरदोलोई को भाजपा ने उम्मीदवार बनाया है जबकि कांग्रेस की आधिकारिक उम्मीदवार मीरा बोरठाकुर हैं।

2021 में भाजपा ने 60 सीटें जीती थीं। 2016 में भी उसे इतनी ही सीटें मिली थीं। भाजपा के नेतृत्व वाले एनडीए ने 44.5 प्रतिशत वोट शेयर के साथ 75 सीटें हासिल कीं, जो विपक्षी महाजोत गठबंधन से मामूली अंतर से आगे थी। महाजोत गठबंधन को 43.7 प्रतिशत वोट मिले थे लेकिन वह केवल 50 सीटें ही जीत सका। हालांकि, भाजपा की 60 सीटों की तुलना में, कांग्रेस की संख्या मात्र 29 थी, जिससे गठबंधन का प्रदर्शन गिर गया। समझदारी दिखाते हुए, कांग्रेस ने इस बार छह दलों का गठबंधन बनाया है, जिसका नाम असम सोनमिलितो मोर्चा (एएसएम) है। इस गठबंधन में रायजोर दल, असम जातीय परिषद (एजेपी), सीपीआई (एम), सीपीआई (एम-एल) लिबरेशन और ऑल-पार्टी हिल लीडर्स कॉन्फ्रेंस (एपीएचएलसी) शामिल हैं। कांग्रेस नेता हाफिज राशिद चौधरी का दावा है कि 'यह गठबंधन विपक्षी वोटों के बंटवारे को प्रभावी ढंग से रोकेगा।'

हालांकि, 2026 के चुनाव बिल्कुल अलग परिस्थितियों में हो रहे हैं। भाजपा ने 2023 में निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन कराया, जिससे मुस्लिम बहुल निर्वाचन क्षेत्रों में हेरफेर हो गया। यह एक ऐसे राज्य में किया गया चतुर प्रयोग था जहां 2011 की जनगणना में मुस्लिम आबादी 34 प्रतिशत बताई गई थी और भाजपा ने इसे जातीय असमिया लोगों के लिए खतरा बताया था। पहले, मुस्लिम मतदाता लगभग 35 सीटों पर नतीजों को प्रभावित कर सकते थे। हालांकि, परिसीमन के बाद, यह संख्या घटकर 25 सीटें रह गई है।

कांग्रेस के 2021 के दो सहयोगी दल अलग हो गए हैं। बदरुद्दीन अजमल के नेतृत्व वाले अखिल भारतीय संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चा (एआईयूडीएफ) ने अकेले चुनाव लड़ने का फैसला किया है। राज्य में भाजपा सरकार द्वारा मुसलमानों पर लगातार किए जा रहे हमलों का विरोध करने में एआईयूडीएफ की विफलता ने पार्टी को कमजोर कर दिया है। एआईयूडीएफ को एक कमजोर क्षेत्रीय ताकत मानते हुए, मुस्लिम मतदाताओं का बड़ा वर्ग भाजपा को अधिक प्रभावी राष्ट्रीय चुनौती देने के लिए कांग्रेस की ओर रुख कर रहा है। हाग्रामा मोहिलारी के नेतृत्व वाली बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट (बीपीएफ) ने सितंबर 2025 में बोडोलैंड टेरिटोरियल काउंसिल (बीटीसी) के चुनाव जीतने के बाद एनडीए की ओर रुख किया है।

असम कांग्रेस अध्यक्ष गौरव गोगोई और मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा

परिसीमन के बाद, बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र में विधानसभा सीटों की संख्या 11 से बढ़कर 15 हो गई है, जिन पर मोहिलारी और बीपीएफ का काफी प्रभाव है। विपक्षी गठबंधन के हिस्से के रूप में, एआईयूडीएफ ने पिछली बार नौ प्रतिशत वोट हासिल किए थे और बीपीएफ को तीन प्रतिशत।

तृणमूल कांग्रेस ने 22 निर्वाचन क्षेत्रों में अकेले चुनाव लड़ने और झारखंड मुक्ति मोर्चा ने ऊपरी असम में 21 उम्मीदवारों को मैदान में उतारने की घोषणा की है। इनके संभावित प्रभाव को लेकर विश्लेषकों में मतभेद हैं।

*

फरवरी में, भाजपा की असम इकाई ने एक एनिमेटेड वीडियो पोस्ट किया था जिसमें मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा को दो मुस्लिम पुरुषों पर काउबॉय शैली में गोली चलाते हुए दिखाया गया था। साथ ही स्क्रीन पर 'कोई दया नहीं!' और 'विदेशी-मुक्त असम' के नारे लिखे हुए थे।

इस वीडियो ने लोगों में आक्रोश पैदा किया और इसलिए इसे हटा दिया गया। लेकिन चुनाव से पहले सरमा के शब्दों और कार्यों ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने खुलेआम कहा है कि अगर इससे मियां समुदाय असम से बाहर निकल जाए, तो उन्हें परेशान करने में कोई आपत्ति नहीं है। मियां समुदाय के सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार का आह्वान करते हुए उन्होंने बेशर्मी से कहा है कि 'हम कुछ भी नहीं छिपा रहे हैं। हम सीधे तौर पर कहते हैं कि हम मियां समुदाय के खिलाफ हैं।' चुनाव की अधिसूचना जारी होने से कुछ ही दिन पहले, राज्य सरकार ने फखरुद्दीन अली अहमद मेडिकल कॉलेज (एफएएएमसी) का नाम बारपेटा मेडिकल कॉलेज कर दिया। यह तब है जबकि पूर्व राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद इस पद को संभालने वाले पहले और एकमात्र असमिया व्यक्ति थे। सरकार का 'अतिक्रमण विरोधी अभियान' खुले तौर पर मुसलमानों को निशाना बना रहा है और रमजान के महीने में भी यह जारी रहा। ईद से पहले, उच्च न्यायालय के किसी भी प्रकार की जबरदस्ती कार्रवाई के निषेध के आदेश के बावजूद, गोलपारा स्थित हसीला बील से 566 परिवारों को बेदखल कर दिया गया।

चुनाव की अधिसूचना जारी होने और आदर्श आचार संहिता लागू होने के बाद, खुले तौर पर कट्टरपंथी संदेशों में कमी आई है, फिर भी असमिया समाज को ध्रुवीकृत करने के प्रयास जारी हैं। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि हाल ही में एक रोड शो में, मुख्यमंत्री का स्वागत सड़क के दोनों ओर कतार में खड़े बुलडोजरों पर सवार भाजपा कार्यकर्ताओं द्वारा फूलों की बारिश से किया गया।

यह ध्यान देने योग्य है कि सरमा के नफरत भरे भाषण और ध्रुवीकरण की रणनीति उनके शासन रिकॉर्ड पर संभावित फैसले को लेकर उनकी चिंता को भी दर्शाती है। राज्य के 2023-24 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, असम में लगभग दस लाख शिक्षित युवा रोजगार की तलाश में थे। राज्य के अनुसूचित जनजाति (एसटी) समुदायों के कुछ वर्गों में भी असंतोष बढ़ रहा है। नवंबर में, असम मंत्रिमंडल ने 'एसटी (घाटी)' नामक एक नई एसटी श्रेणी बनाने का प्रस्ताव रखा, जिसमें छह समुदाय शामिल होंगे - अहोम, सुतिया, मोरान, मटक, कोच-राजबोंगशी और आदिवासी। इस प्रस्ताव से पहले, एसटी (मैदानी) समुदायों को सार्वजनिक शिक्षा और रोजगार में 10 प्रतिशत आरक्षित सीटें मिलती थीं, जबकि एसटी (पहाड़ी) समुदायों को 5 प्रतिशत सीटें मिलती थीं। एक नई श्रेणी बनाने और छह और समुदायों - विशेष रूप से अहोम और कोच-राजबोंगसी - को अनुसूचित जनजाति का दर्जा देने के कदम का मौजूदा अनुसूचित जनजाति समुदायों ने कड़ा विरोध किया है। ये हाल तक बड़ी संख्या में इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे थे।

कार्बी आंगलोंग जिले में कार्बी और हिन्दी भाषी बिहारी समुदायों के बीच हाल ही में हुई हिंसक घटनाओं ने राज्य की जटिल जातीय-राजनीतिक स्थिति को उजागर कर दिया है। कार्बी जनजातियों का दावा है कि बिहार से आकर यहां बसने वाले लोग उनके चारागाहों पर अतिक्रमण कर रहे हैं; उन्होंने एक भाजपा नेता के पैतृक घर और खेरोनी बाजार को जला दिया, जबकि पुलिस मूकदर्शक बनी रही।

लोगों को जो दिख रहा है, वह उन्हें पसंद नहीं आ रहा है। हिमंता बिस्वा सरमा के प्रति असंतोष वास्तविक है, और राज्य में समावेशी भावना की एक स्पष्ट अंतर्धारा मौजूद है। गुवाहाटी के एक समाजशास्त्री ने नाम न छापने की शर्त पर कहा कि सवाल यह है कि क्या विपक्ष इस भावना का राजनीतिक लाभ उठा सकता है। ■

इस बार दलबदल एकतरफा नहीं है। चुनाव की घोषणा होने के बाद से ही भाजपा से कांग्रेस में भी दलबदल देखने को मिल रहा है। मुस्लिम मतदाताओं का बड़ा वर्ग भाजपा को अधिक प्रभावी राष्ट्रीय चुनौती देने के लिए कांग्रेस की ओर रुख कर रहा है

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले स्वतंत्र लेखक और राजनीति, मानवाधिकार और विदेश मामलों पर टिप्पणीकार हैं

हम चुकाएंगे उनकी जंग...

पेज एक का शेष

इस कमी के संकेत अब अप्रत्याशित जगहों पर भी दिखने लगे हैं। खबरें हैं कि कई शहरों में रेस्तरां और कैटरिंग व्यवसायों ने एलपीजी की कमी के कारण अपने संचालन को कम कर दिया है या अस्थायी रूप से बंद कर दिया है। इसका असर क्लाउड किचन से लेकर गिग इकॉनमी में काम करने वाले डिलीवरी कर्मियों तक, कई श्रमिकों पर पड़ रहा है।

युद्ध अगर लंबा खिंचता है, तो भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव गहरे हो सकते हैं। निर्यात-उन्मुख क्षेत्रों को लंबे समय तक मांग के झटके झेलने पड़ सकते हैं, जिससे कंपनियों को अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं और बाजारों पर फिर से विचार करना पड़ेगा। ऊर्जा की ऊंची कीमतें महंगाई बढ़ा सकती हैं, जिससे केन्द्रीय बैंक को लंबे समय तक ब्याज दरें ऊंची रखनी पड़ सकती हैं। इससे निवेश और आर्थिक विकास में सुस्ती का खतरा पैदा होगा। उर्वरक आपूर्ति में व्यवधान और कृषि लागत में वृद्धि ग्रामीण संकट को बढ़ा सकती है और खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो सकती है। पश्चिम एशिया में भू-राजनीतिक अस्थिरता खाड़ी देशों में काम कर रहे लाखों भारतीयों से आने वाली धनराशि (रेमिटेंस) को भी खतरे में डाल सकती है, जो भारत के लिए विदेशी मुद्रा का एक बड़ा स्रोत है।

सबसे चिंताजनक अनुमान अमेरिका स्थित थिंक टैंक सोलेबिलिटी का है, जिसकी रिपोर्ट कहती है कि संघर्ष लंबा खिंचा तो सिर्फ गैस और उर्वरक संकट के कारण ही दीर्घकालिक प्रभाव भारत की जीडीपी को लगभग 1.7 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं।

युद्ध भले ही हजारों किलोमीटर दूर लड़े जा रहे हों, लेकिन उनके आर्थिक परिणाम हर घर तक महसूस किए जाते हैं। कोंकण के आम बागानों से लेकर दिल्ली के रेस्तरां तक, उर्वरक आयात से लेकर ऊर्जा आपूर्ति तक, इसके प्रभाव व्यापार मार्गों, बाजारों और आपूर्ति श्रृंखलाओं के जरिये दूर-दूर तक फैलते हैं।

अल्फांसो की फसल का दुर्भाग्य बताता है कि कभी-कभी आम की मिठास भी युद्ध की कड़वाहट के आगे फीकी पड़ जाती है। ■

ऑनलाइन जंग और 'लिपिकीय त्रुटि'

कुणाल चटर्जी

बंगाल में विधानसभा चुनाव की लड़ाई अब और तेज होती जा रही है। जैसे-जैसे राज्य 23 और 29 अप्रैल को होने वाले मतदान के लिए तैयार हो रहा है, मैदान में उतरी दो मुख्य पार्टियां - तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) और भाजपा पूरी ताकत से जुट गई हैं, और वह भी ऑनलाइन।

वैसे, कुछ लोगों को 2021 के चुनावी अभियान के गीतों के हास्य और रचनात्मकता की याद भी आ रही है - जैसे, तृणमूल का 'खेला होबे' (खेल होगा) बनाम भाजपा का 'पिशी जाओ' (अलविदा बुआ) जो इतालवी लोकगीत 'बेला चाओ' की धुन पर आधारित था और जो दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवाद-विरोधी गीत बन गया था। लेकिन इस बार टीएमसी भी ईंट का जवाब पत्थर से दे रही है।

इस बार टीएमसी अपने नारे 'जोतोई कोरो हमला, अबार जितबे बांग्ला' (हम पर जितना भी हमला करो, बंगाल ही जीतेगा) के साथ भाजपा का डटकर मुकाबला कर रही है। भाजपा को 'बांग्ला विरोधी जमींदार' के तौर पर पेश करते हुए, इस गाने के बोल भाजपा के धर्म, भाषा, प्रवासियों, एसआईआर और एनआरसी पर किए गए हमलों का जिक्र करते हैं; वहीं ममता बनर्जी को बंगाल और बंगाली गौरव की रक्षा करने वाली के तौर पर दिखाया गया है। जनवरी में, जब इंडियन पॉलिटिकल एक्शन कमिटी (आई-पैक) पर ईडी की रेड चल रही थी, तब रिलीज हुए इस तीन मिनट के गाने को मार्च तक 12.8 करोड़ व्यूज मिल चुके थे।

भाजपा का साढ़े चार मिनट का गाना डर, बेरोजगारी और काले धन के मुद्दे को जोर-शोर से उठाता है। उसे यूट्यूब पर दो महीनों में 2,16,000 से ज्यादा बार देखा गया। उसका चुनावी नारा है- 'पॉल्टोनो दोरकार, चाई बीजेपी सरकार' (बदलाव की जरूरत है, हमें भाजपा सरकार चाहिए)। इस वीडियो में मोदी ने अपने अंदाज में बोला है। लेकिन इसने अनजाने में ही टीएमसी को एक हथियार थमा दिया है। बांग्ला न जानने वाले भाजपा के कुछ समर्थक इस नारे से 'चाई' शब्द हटा दे रहे हैं; और इस शब्द के बिना नारे का मतलब यह निकलता है कि जिसे बदलने की जरूरत है, वह भाजपा सरकार ही है!

भाजपा के तरकश में 'भाग तृणमूल भाग' (भागो तृणमूल भागो), 'बांचते चाई, बीजेपी ताई' (भाजपा चाहिए क्योंकि हम जीना चाहते हैं) और 'जोनोगोन दिच्छे डाक, तृणमूल निपात जाक' (जनता ने आवाज दी है, तृणमूल का खात्मा हो) जैसे नारे भी शामिल हैं। ममता बनर्जी ने जब कहा कि अगर भाजपा सरकार आएगी, तो वह अन्य भाजपा-शासित राज्यों की तरह यहां भी त्योहारों के दौरान मांस-मछली बेचने वालों की दुकानें बंद करवा देगी। इसका जवाब देने के लिए बिधाननगर सीट से भाजपा उम्मीदवार ने हाथ में 'कातला माछ' (ताजा पानी में पाए जाने वाली कतला मछली) लेकर

प्रचार किया। पूर्व सांसद और स्तंभकार स्वपन दासगुप्ता समेत भाजपा के अन्य उम्मीदवारों ने भी टीवी चैनलों के लोगों को अपने साथ दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया, ताकि वे इस बात का सबूत रिकॉर्ड कर सकें कि उनके खाने की मेज पर हमेशा मछली परोसी जाती है।

नामांकन की आखिरी तारीखें 8 और 12 अप्रैल हैं, इसलिए अभी तो शुरुआत ही हुई है। जहां एक तरफ आधिकारिक हैंडल नरेन्द्र मोदी और ममता बनर्जी पर निजी हमले करने से बच रहे हैं, वहीं भाजपा समर्थक सोशल मीडिया पर पूरी तरह से बेलगाम हो गए हैं; वे मुख्यमंत्री पर अश्लील टिप्पणियां तक कर रहे हैं और उन्हें जान से मारने की धमकियां भी दे रहे हैं। टीएमसी महासचिव अभिषेक बनर्जी ने कहा है कि इनसे 'भाजपा का असली चेहरा' सामने आ गया है और ये बंगाल की 'हर महिला' का अपमान है।

संक्षेप में कहें तो, वाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब और एआई-आधारित रील्स पर चल रही लड़ाई उतनी ही जोरदार है जितनी कि जमीन पर चल रहे अभियान। भाजपा के राष्ट्रीय आईटी सेल और उसके राज्य-स्तरीय डिजिटल वॉर रूम का मुकाबला करने के लिए, तृणमूल ने चुपचाप एक विकेन्द्रीकृत सोशल मीडिया सेल तैयार किया है, जो एक साथ मिनी न्यूज रूम, संकट प्रबंधन इकाई और अभियान नियोजन सेल के रूप में काम करता है।

टीएमसी का आईटी सेल 'दीदीर दूत' (दीदी का दूत) नाम के मोबाइल ऐप के जरिये अपने कार्यकर्ताओं और समर्थकों से जुड़ा हुआ है। यह लोगों को एकजुट करता है, उनसे जुड़ता है, उन्हें काम सौंपता है, पल-पल की जानकारी देता है, और साथ ही इंटरएक्टिव क्विज और गेम जैसे फीचर्स भी देता है, ताकि यूजर्स अभियान की गतिविधियों में लगातार जुड़े रहें और उनका उत्साह बना रहे। 'द इंडियन एक्सप्रेस' से बात करते हुए, तृणमूल के आईटी सेल के प्रमुख देबांगशु भट्टाचार्य ने कहा कि उनकी मुख्य रणनीति लोगों को यह समझाना है कि भाजपा झूठ फैला रही है। यह 'जैसे को तैसा' वाली बात है: जब भी भाजपा का आईटी सेल बंगाल की किसी बात का मजाक उड़ाता है, तो तृणमूल यूपी और गुजरात-जैसे भाजपा-शासित राज्यों की असलियत सामने रख देती है।

द इंडियन एक्सप्रेस ने अभी 23 मार्च को ही खबर दी है कि टीएमसी के सोशल मीडिया इकोसिस्टम ने 10,000 से ज्यादा रील्स और छोटे वीडियो बनाए हैं, जिन्हें पार्टी से जुड़े आधिकारिक चैनलों, वॉलंटियर नेटवर्क और स्वतंत्र इन्फ्लुएंसर्स के जरिये अलग-अलग प्लेटफॉर्म पर फैलाया गया है। आई-पैक के पूर्व सदस्य आनंद चौरसिया ने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि टीएमसी आईटी सेल को छोटे वीडियो, रील्स, मीम्स और ग्राफिक्स के जरिये रोजाना की कहानी को आकार देने का काम सौंपा गया है।

कंसल्टेंट ऋधि प्रोतिम नियोगी का कहना है कि 'भाजपा का आईटी सेल अब भी ज्यादातर केन्द्रीय निर्देशों और आम मैसेजिंग पर ही निर्भर रहता है; स्थानीय पार्टी मशीनरी और बूथ-स्तर के फ़ीडबैक लूप के साथ इसका तालमेल उतना अच्छा नहीं है। आई-पैक और टीएमसी के आईटी सेल ने वोटर-स्तर के डेटा और जमीनी कार्यकर्ताओं, बूथ-स्तर के एजेंटों, फील्ड टीमों और 'दीदी के बोलो' (दीदी को बताओ) हेल्पलाइन के बीच एक ज्यादा आसान और सीधा जुड़ाव बनाया है, जिससे अभियान में बदलाव करने के लिए रियल-टाइम जानकारी मिलती रहती है।'

किस आईटी सेल की जीत होगी, यह जानने के लिए हमें मतगणना के दिन 4 मई तक इंतजार करना होगा।

वाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब और एआई-आधारित रील्स पर चल रही लड़ाई उतनी ही जोरदार है जितनी कि जमीन पर चल रहे अभियान। भाजपा के राष्ट्रीय आईटी सेल और उसके राज्य-स्तरीय डिजिटल वॉर रूम का मुकाबला तृणमूल का विकेन्द्रीकृत सोशल मीडिया सेल कर रहा है

माफ करें, किसी को अब भी सबूत चाहिए

'दीदी' ने केरला की एक 'लिपिकीय त्रुटि' को यहां मुद्दा बना दिया है। दरअसल, केरला के मुख्य निर्वाचन अधिकारी ने चुनाव आयोग का एक दिशानिर्देश जारी किया, जिस पर भाजपा की मुहर लगी हुई थी। मीडिया में छपी रिपोर्ट लहराते हुए ममता ने कहा कि 'किसी को अब भी सबूत चाहिए कि आयोग और भाजपा आपस में मिले हुए हैं, तो यह रहा।'

जब पार्टी के सांसदों, विधायकों और सोशल मीडिया सेल ने इस विवाद को और हवा दी, तो साइबर पुलिस मुख्यालय हरकत में आ गया। महुआ मोइत्रा जैसी सांसदों को कड़े नोटिस भेजे गए, जिनमें चुनाव आयोग का मजाक उड़ाने वाली पोस्ट हटाने की मांग की गई थी। इसके बजाय, उन्होंने खुशी-खुशी उस नोटिस को ही दोबारा पोस्ट कर दिया, जिसमें उन पर आयोग का अपमान करने, सांप्रदायिक सौहार्द को बिगाड़ने और फूट तथा वैमनस्य भड़काकर व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करने का आरोप लगाया गया था।

लेकिन मुख्य चुनाव अधिकारी के दफ्तर में भाजपा की मुहर पहुंची कैसे? आयोग की तरफ से जो सफाई दी गई, वह थी कि भाजपा ने 2019 की एक गाइडलाइन शेयर की थी, जो एक 'क्लर्क की गलती' की वजह से भेज दी गई। क्या आपने कभी इससे भी ज्यादा बेतुकी बात सुनी है? ■

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

कांग्रेस के नेतृत्व वाला मोर्चा वापसी को तैयार

केरला के चुनाव में सामाजिक सद्भाव के स्पष्ट राजनीतिक संदेश के साथ वापसी की संभावना वास्तविक प्रतीत होती है

के.ए. शाजी

केरला में सरकारें जल्दी नहीं बदलतीं। इसके राजनीतिक उलटफेर भी शायद ही कभी नाटकीय होते हैं। ये बदलाव धीरे-धीरे होते हैं, संदेह के स्वरों से, सवालिया बातचीत से और धीरे-धीरे कमजोर होती निष्ठाओं से। अब जब राज्य में विधानसभा चुनाव होने को हैं, यह धीमी हलचल भी साफ नजर आने लगी है।

2021 में केरला में चार दशकों से चली आ रही बारी-बारी से सरकारों वाली परिपाटी तोड़कर इतिहास रचने वाला सीपीआई (एम) के नेतृत्व वाला वाम लोकतांत्रिक मोर्चा (एलडीएफ) अब न सिर्फ सत्ता-विरोधी लहर का सामना कर रहा है, उसके सामने राजनीतिक सत्ता के और भी गहरे क्षरण की चुनौती है। दूसरी ओर, कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चा (यूडीएफ) को अब वामपंथियों के लड़खड़ाने का इंतजार नहीं करना है। आज उसके पास उस स्पष्टता और अनुशासन के साथ सक्रिय रूप से वापसी के पर्याप्त तर्क हैं, जो वर्षों से इससे दूर रहा है।

विपक्ष के नेता वी.डी. सतीशन तेजतर्रार लेकिन सुसंगत प्रचारक के रूप में उभरे हैं। संडे नवजीवन से बात करते हुए सतीशन ने कहा, "यह सिर्फ कुशासन का मामला नहीं है। हम ऐसी स्थिति देख रहे हैं ,जहां भाजपा की मौजूदगी से सीपीआई (एम) को अप्रत्यक्ष रूप से फायदा हो रहा है। केरल का असली राजनीतिक सवाल यही है।" उन्होंने एलडीएफ पर अपने वैचारिक आधार से भटकाव का आरोप लगायाः "आज कांग्रेस असली वामपंथियों की चिंताओं को भी दर्शाती है। उनमें से कई सीपीआई (एम) के बदलते स्वरूप से खुद को अलग-थलग महसूस करते हैं।"

यह आरोप अपने आप में वामपंथी विचारधारा की बुनियाद पर चोट करता है। ऐसे राज्य में जहां सीपीआई (एम) लंबे समय से भाजपा के खिलाफ वैचारिक स्पष्टता का दावा करती रही है, वहां किसी भी तरह के राजनीतिक समझौते के गंभीर परिणाम हो सकते हैं। कांग्रेस इस मुकाबले को महज दो गठबंधनों के बीच चुनाव के रूप में नहीं, राजनीतिक ईमानदारी के सवाल के रूप में पेश कर रही है।

राहुल गांधी ने इस रुख को और मजबूत किया है, और मुख्यमंत्री पिनारयी विजयन के साथ उनके संवाद ने चुनाव प्रचार को ऐसा रुख दिया है जो परंपरा को तोड़ता है। राजनीतिक विश्लेषक जोसेफ सी. मैथ्यू यह बदलाव बहुत साफ महसूस करते हैंः "लंबे समय तक केरला में कांग्रेस की भूमिका प्रतिक्रिया वाली रही। अब वह एजेंडा तय कर रही है। सीपीआई (एम) - भाजपा समीकरण का सवाल उठाकर, वह वामपंथियों को न सिर्फ अपने शासन रिकॉर्ड का, बल्कि अपनी वैचारिक स्थिति का भी बचाव करने को मजबूर कर रही है।"

कांग्रेस ने जमीनी रणनीति में भी बदलाव किया है। पिछले एक साल में, पार्टी ने केरला में स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और राज्य की अर्थव्यवस्था के भविष्य पर केन्द्रित अनेक सम्मेलन और शिविर किए। ये केवल प्रतीकात्मक अभ्यास नहीं थे, इनका उद्देश्य एक ऐसी शासन योजना प्रस्तुत करना था जो एलडीएफ की आलोचना से परे हो।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में, कांग्रेस ने बुनियादी ढांचे और कर्मचारियों की कमी दूर करते हुए प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा नेटवर्क की मजबूती का वादा किया है। शिक्षा के क्षेत्र में, गुणवत्ता, रोजगार क्षमता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा पर जोर देते हुए केरल के मजबूत आर्थिक आधार को बदलती आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है। रोजगार के क्षेत्र में, इसका मुख्य ध्यान विकेन्द्रीकृत औद्योगिक विकास, लघु उद्यमों को समर्थन देकर ऐसे अवसर पैदा करने पर रहा है जो पलायन कम करे।

नीति की इस कल्पना और अभिव्यक्ति के साथ एक स्पष्ट राजनीतिक संदेश भी हैः 'केरला के सामाजिक सद्भाव के संरक्षक के रूप में कांग्रेस'। ऐसे समय में जब राष्ट्रीय राजनीति ध्रुवीकरण से बुरी तरह ग्रस्त है, यूडीएफ अल्पसंख्यक अधिकारों, संवैधानिक मूल्यों और सामाजिक न्याय की रक्षा की बात कर रहा है। पार्टी ने यह तर्क देते हुए कि विकास को समावेशिता से अलग नहीं किया जा सकता, केरल के बहुलवादी ताने-बाने की रक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता बार-बार रेखांकित की है। यह आकस्मिक नहीं है। यह समुदायों को जोड़ने वाले एक व्यापक सामाजिक गठबंधन के पुनर्निर्माण के कांग्रेस के प्रयास का केन्द्रीय तत्व है। कांग्रेस द्वारा अपने आंतरिक विरोधाभासों का प्रबंधन भी उतना ही महत्वपूर्ण रहा है। पार्टी वरिष्ठ नेताओं और के. सुधाकरन जैसे सांसदों की महत्वाकांक्षाओं सहित उम्मीदवार चयन को लेकर संभावित टकराव को अपेक्षाकृत अनुशासन के साथ संभालने में सफल रही है। संगठनात्मक परिपक्वता का संकेत देते हुए पार्टी सार्वजनिक तौर पर किसी भी तरह की फूट से बचती रही है, जो पिछले चुनावों में गायब थी। इसने एक स्थिर विकल्प के रूप में इसकी विश्वसनीयता बढ़ाई है।

इसके विपरीत, एलडीएफ खुद को जटिल और असहज हालात में देख रहा है। पिनारयी विजयन केरल में सबसे शक्तिशाली राजनीतिक व्यक्ति बने हुए हैं, लेकिन उनकी यह शक्ति सवालों से परे नहीं है। कभी निर्णायक और आश्वस्त करने वाली उनकी नेतृत्व शैली पर सवाल उठने लगे हैं। लोग मानते हैं कि वह तेजी से केन्द्रीकृत और जमीन से दूर हुई है। निर्णय लेने की प्रक्रिया संकीर्ण दायरे में सिमटी, और असहमति के लिए गुंजाइश सीमित हुई है।

आरोप हैं कि एलडीएफ ने जनसंपर्क के ज़रिए विजयन को आगे बढ़ाने में भारी निवेश किया है, विरोधी जिसे 'व्यक्ति पूजा' बताते हैं। कांग्रेस इसे उस सामूहिक लोकाचार से बड़ा विचलन बताती है, जिससे वामपंथ कभी परिभाषित होता था।

ये धारणाएं सिर्फ विपक्ष तक ही सीमित नहीं हैं। वामपंथी दलों के कुछ वर्गों में भी सतर्कता के साथ ही सही, ऐसे विचारों की अनुगूंज सुनी जा सकती है। बतौर विधायक और मंत्री चार दशकों के सार्वजनिक जीवन के बाद सीपीआई (एम) से बाहर निकलने वाले अनुभवी नेता जी. सुधाकरन यूडीएफ के समर्थन से अंबलपुझा से चुनावी मैदान में हैं। उनका निकलना पार्टी के भीतर व्याप्त बेचैनी का राजनीतिक प्रतीक बनकर उभरा है। उन्होंने कहा, "पार्टी को अपनी सामूहिक कार्यप्रणाली पर लौटना होगा। केन्द्रीकरण को सामान्य व्यवस्था नहीं बनाया जा सकता। वामपंथी दल इस तरह काम नहीं करते।" जमीनी स्तर पर, अस्थिरता के संकेत हैं। कभी वामपंथी राजनीतिक तंत्र की रीढ़ दिखने वाले स्थानीय नेता, सहकारी समितियों के सदस्य और सामुदायिक मध्यस्थ अब एक सूत्र में नहीं दिखते।

लेखक और आलोचक एम.एन. करासेरी इसे व्यापक सांस्कृतिक संदर्भ में रखते हैं। वे कहते हैं, "वामपंथी दलों का अब भी मजबूत आधार और वैचारिक आकर्षण है। लेकिन चुनाव महज विरासत के आधार पर नहीं जीते जाते। इसके लिए नवीनीकरण की जरूरत होती है। सवाल यह है कि क्या एलडीएफ समय रहते अपना नवीनीकरण कर पाया है।"

सबरीमाला की स्मृति आज भी राजनीतिक परिदृश्य से धुंधली नहीं पड़ी है। कितने ही श्रद्धालुओं के लिए, यह मुद्दा महज अदालती फैसले से संबंधित नहीं था, बल्कि राज्य की प्रतिक्रिया से भी जुड़ा था। यह धारणा कि सरकार ने आस्था के प्रति पर्याप्त संवेदनशीलता दिखाए बिना, सख्त रुख दिखाया, पूरी तरह से दूर नहीं हुई है।

करास्सेरी कहते हैं, "कितने ही लोगों को लगा कि सरकार उनकी बात नहीं सुन रही है। यह भावना आज भी क़ायम है।" भाजपा ने इस भावना को चुनावी लाभ में बदलने की कोशिश की, लेकिन अपनी रफ़्तार नहीं बनाए रख सकी। कांग्रेस ने संवैधानिक ढांचे के भीतर रहते हुए धर्म का सम्मान करने वाली सरकार के रूप में इस मुद्दे को संभाला। इस संतुलित दृष्टिकोण को विशेष रूप से मध्य केरल में खासी सराहना मिली। एलडीएफ अपने काम का आत्मविश्वास से बचाव कर रही है। कन्नूर के पेरावूर से चुनाव लड़ रही वरिष्ठ नेता के.के. शैलजा ने विपक्ष के दावों को खारिज करती हैंः "एलडीएफ सरकार ने स्वास्थ्य, कल्याण और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसनीय काम किए हैं। लोग हमारे काम के आधार पर हमारा मूल्यांकन करेंगे, आरोपों के आधार पर नहीं।"

हालांकि, मतदाताओं का नजरिया बहुत साफ नहीं है। कल्याणकारी योजनाएं जारी हैं, लेकिन उन्हें लेकर पहले जैसा राजनीतिक उत्साह नहीं रहा। प्रवासन और बदलती आकांक्षाओं से प्रभावित युवा मतदाता कल्याणकारी योजनाओं से परे अवसर तलाश रहे हैं। राज्य में रोजगार सृजन उम्मीदों के अनुरूप नहीं हुआ है। शिक्षित युवा बेहतर अवसर के लिए केरल से बाहर जा रहे हैं। वित्तीय दबावों ने कल्याणकारी योजनाओं के विस्तार की गुंजाइश सीमित कर दी हैं।

ऐसी चिंताएं हमेशा तत्काल चुनावी बदलावों में भले तब्दील नहीं होतीं, लेकिन माहौल को इस तरह आकार दे देती हैं जो राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। निरंतर प्रयासों के बावजूद, भाजपा के संगठनात्मक विस्तार का फ़ायदा चुनावी सफलता में तब्दील नहीं हुआ।

इससे एक ऐसा खुला मुकाबला उभर कर सामने आया है जो वर्षों से देखने को नहीं मिला था। एलडीएफ की ताकतें महत्वपूर्ण हैंः उसका कार्यकर्ता आधार अनुशासित है, उसकी वैचारिक अपील आज भी प्रासंगिक है, और पिनारयी विजयन का सभी वर्गों में सम्मान है। लेकिन कांग्रेस ने लड़ाई की शर्तें बदल दी हैं। संगठित, मुखर और राजनीतिक रूप से सक्रिय होकर, वह रोजगार, सार्वजनिक सेवाओं, सामाजिक न्याय और सांप्रदायिक सद्भाव पर आधारित शासन का ढांचा पेश कर रही है। एक दशक में पहली बार, कांग्रेस के नेतृत्व में सत्ता की वापसी की संभावना जमीन पर दिखाई दे रही है। ■

केरला में जमीनी हलचल बता रही है कि वहां कांग्रेस ने बना ली है काफी मजबूत पकड़

कल्याणकारी योजनाएं जारी हैं, लेकिन उन्हें लेकर पहले जैसा राजनीतिक उत्साह नहीं है। प्रभावित युवा मतदाता कल्याणकारी योजनाओं से परे अवसर तलाश रहे हैं। राज्य में रोजगार सृजन उम्मीदों के अनुरूप नहीं हुआ है। इसलिए शिक्षित युवा बेहतर अवसर के लिए केरला से बाहर जा रहे हैं

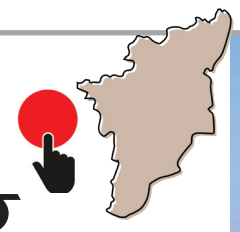

विरोधी वोटों के दावेदार हजार स्टालिन के लिए अच्छे हालात

तमिलनाडु में किसी बड़े उथल-पुथल की संभावना कम ही नजर आ रही

के.ए. शाजी

जैसे-जैसे तमिलनाडु एक और विधानसभा चुनाव की ओर बढ़ रहा है, राजनीतिक परिदृश्य में वह विरोधाभास दिखने लगा है जो राज्य की पहचान बन गया है। द्रविड़ वर्चस्व, जन-कल्याण आधारित शासन और धार्मिक ध्रुवीकरण का विरोध करने वाली राजनीतिक संस्कृति बनी हुई है। वहीं, विपक्ष में उभरते नए चेहरों और बनते-बिगड़ते गठबंधनों की हलचल है। इन सारी धाराओं को एक साथ देखें तो ये किसी बड़े उथल-पुथल की ओर कम, और राजनीतिक स्थितियों के और सुदृढ़ होने का अधिक संकेत करती हैं- खास तौर पर मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन के नेतृत्व वाली सत्ताधारी द्रविड़ मुन्नेत्र कजगम (डीएमके) के लिए।

हिन्दुत्व का राजनीतिक विरोध तमिलनाडु की खास पहचान बना हुआ है। ई.वी. रामासामी द्वारा रखी गई वैचारिक नींव यहां की राजनीति को आज भी आकार दे रही है; यह धार्मिक लामबंदी के बजाय सामाजिक न्याय, भाषाई पहचान और तर्कवाद को प्राथमिकता देती है। यह जीवंत ढांचा आज भी मतदाताओं की अपेक्षाओं और राजनीतिक रणनीतियों को प्रभावित करता है। जैसा कि चेन्नई स्थित शिक्षाविद सी. लक्ष्मणन कहते हैं, तमिलनाडु में चुनाव केवल पहचान के आधार पर नहीं, बल्कि गरिमा, कल्याण और अधिकारों के मुद्दों पर लड़े जाते हैं।

इस ढांचे में अपने पैर जमाने के लिए भाजपा को संघर्ष करना पड़ रहा है। अपने सांगठनिक आधार का विस्तार करने और नेतृत्व को चमकाने पर भारी-भरकम खर्च करने के बावजूद, उसकी रणनीतियां मोटे तौर पर राज्य की राजनीतिक सोच के अनुरूप नहीं दिखी हैं। धार्मिक पहचान को आगे लाने के प्रयासों को सीमित सफलता ही मिली है, जबकि गठबंधन बनाने की कोशिशें क्षेत्रीय पार्टियों की वजह से बाधित हुई हैं, जो अपनी जगह छोड़ने को तैयार नहीं। जैसा कि पत्रकार एम. सतीश कुमार कहते हैं, तमिलनाडु में भाजपा की समस्या आकांक्षा-महत्वाकांक्षा की कमी नहीं, बल्कि एक ऐसी राजनीतिक भाषा की कमी है जो लोगों के दिलों को छू सके।

गठबंधन पर अपनी निर्भरता के कारण भाजपा का एआईडीएमके (ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कजगम) के साथ एक जटिल रिश्ता बन गया है; यह एक ऐसी पार्टी है जो खुद अंदरूनी अस्थिरता से जूझ रही है। जे. जयललिता के निधन के बाद से, एआईडीएमके को एक एकजुट ताकत के रूप में खुद को फिर से स्थापित करने में काफी संघर्ष करना पड़ रहा है। नेतृत्व को लेकर चल रही खींचतान अब गुटों के बीच गहरी और स्थायी दरारों में बदल गई है। हालांकि ई.के. पलानीस्वामी ने संगठन पर कुछ हद तक नियंत्रण हासिल कर लिया है, फिर भी पार्टी में एकता अब भी दूर की कौड़ी बनी हुई है। पकड़ मजबूत करने के उनके प्रयासों ने ओ. पनीरसेल्वम के खेमे से जुड़े गुटों को पार्टी से अलग-थलग कर दिया है; वहीं, वी.के. शशिकला की छाया अब भी पार्टी के भविष्य पर अनिश्चितता के बादल की तरह मंडरा रही है।

कोयंबटूर के वरिष्ठ एआईएडीएमके नेता सिंगाई रामचंद्रन ने बड़ी बेबाकी के साथ समस्या की गंभीरता को स्वीकार कियाः ऐसे समय जब वोट जुटाने पर ध्यान देना चाहिए था, पार्टी अब भी नेतृत्व के मुद्दे पर उलझी हुई है। आलोचकों का कहना है कि पलानीस्वामी सत्ता अपनी ताकत स्थापित करने में तो सफल रहे हैं, लेकिन आम सहमति नहीं बना पाए हैं। यह असंतुलन पार्टी की उस क्षमता को कमजोर करता है जिससे वह ऐसे चुनाव में विश्वसनीय चुनौती पेश कर सके जिसमें दोनों की आवश्यकता है।

यह विखंडन एआईएडीएमके तक ही सीमित नहीं है। पट्टाली मक्कल काची (पीएमके) अपने मजबूत वन्नियार आधार के साथ प्रभावशाली तो बनी हुई है, लेकिन राजनीतिक रूप से अस्थिर है। आंतरिक फेरबदल, पीढ़ीगत परिवर्तन और बदलते गठबंधन विकल्पों ने इसकी स्थिति को अनिश्चित बना दिया है। हालांकि उत्तरी तमिलनाडु में इसकी कुछ हद तक पकड़ मजबूत बनी हुई है, लेकिन व्यापक विपक्षी विमर्श को आधार देने के लिए आवश्यक एकजुटता का अभाव है। जैसा कि लक्ष्मणन बताते हैं, पीएमके वोट जुटा सकती है, लेकिन उन्हें एकजुट नहीं कर सकती।

राज्य की भीड़भाड़ वाले राजनीतिक मंच पर अब अभिनेता विजय ने कदम रख दिया है, जिनका राजनीति में आना उत्साह और उथल-पुथल, दोनों का मेल है। अलग-अलग तबकों में जबरदस्त लोकप्रियता रखने वाले विजय एक नई राजनीतिक ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करते हैं। हालांकि, उनका शुरुआती असर शायद बिखरा हुआ ही रहने वाला है। उनके समर्थकों का आधार काफी हद तक डीएमके-विरोधी मतदाता वर्ग से मेल खाता है, जिससे अलग-अलग सीटों पर सत्ता-विरोधी वोटों के बंट जाने की संभावना बढ़ जाती है। जैसा कि डीएमके के प्रवक्ता सेलम धरणीधरन बताते हैं, विजय को अगर पांच से आठ फीसद वोट भी मिल जाते हैं, तो वे दर्जनों सीटों के नतीजों को बदल सकते हैंः अपनी छाप छोड़ने के लिए उन्हें किसी जबरदस्त जीत की जरूरत नहीं। फिलहाल, विश्लेषकों का मानना है कि विजय डीएमके के लिए खतरा कम, बल्कि उसके विरोधियों के लिए नई उलझन ज्यादा हैं।

विपक्ष की आंतरिक फूट सत्ताधारी गठबंधन की आपसी एकता के बिल्कुल विपरीत है। डीएमके ने, कांग्रेस और सीपीआई (एम) जैसी वामपंथी पार्टियों के साथ मिलकर, न केवल अपने गठबंधन को एकजुट रखा है, बल्कि उसे और मजबूत भी किया है। डीएमके और कांग्रेस के बीच सीटों के बंटवारे को लेकर शुरुआती मतभेद, जो अक्सर गठबंधन की राजनीति में टकराव का कारण बनते हैं, बातचीत से सुलझा लिए गए; दोनों ही पक्षों ने अपनी-अपनी अधिकतम मांगें रखने के बजाय एकता के महत्व को प्राथमिकता दी। सीपीआई (एम) ने भी बिना किसी सार्वजनिक विवाद के बातचीत को आगे बढ़ाया, जिससे एक अनुशासित और तालमेल वाले मोर्चे की छवि और मजबूत हुई। कांग्रेस नेता मानिकम टैगोर स्वीकार करते हैं कि मतभेद थे, लेकिन साथ ही इस पर भी जोर देते हैं कि दोनों पक्षों के बीच एक साझा समझ थी कि आपसी फूट का फायदा केवल विपक्ष को ही होगा। वामपंथी दल भी इसी व्यावहारिक सोच का समर्थन करते हैं; वे सीटों के बंटवारे को एक ऐसी समायोजन प्रक्रिया के तौर पर देखते हैं, जिसका मूल उद्देश्य एक व्यापक राजनीतिक लक्ष्य को हासिल करना है।

इसके नतीजे साफ हैं। इस बहुदलीय मुकाबले में, अगर विपक्ष के वोट बंट जाते हैं, तो एक मजबूत गठबंधन, अपने स्थिर वोट शेयर के दम पर भी, आसानी से जीत हासिल कर सकता है। डीएमके को अपने विस्तार के लिए कोई बहुत बड़ा कदम उठाने की जरूरत नहीं। उसे बस अपनी जगह पर मजबूती से टिके रहना है, जबकि उसके विरोधियों में बचे वोटों की बंदरबांट होगी।

इससे एक बार फिर 'सत्ता-विरोधी लहर' की ओर ध्यान जाता है। हालांकि सरकार के प्रति कुछ जगहों पर असंतोष हो सकता है, लेकिन एकजुट विपक्ष के अभाव में, यह असंतोष एक निर्णायक चुनावी ताकत में तब्दील होता नहीं दिखता। इसके बजाय, यह असंतोष कई पार्टियों- जैसे एआईडीएमके, भाजपा, पीएमके और विजय के राजनीतिक मंच- के बीच बंट जाने की संभावना है; और ये सभी पार्टियां एक ही तरह के मतदाताओं को अपनी ओर खींचने की कोशिश करेंगी। जैसा कि एक अनुभवी विश्लेषक कहते हैं, असंतोष तो मौजूद है, लेकिन इस बात पर कोई सहमति नहीं कि इसका फायदा किसे मिलने जा रहा। और यह डीएमके के पक्ष में जाने वाला सबसे बड़ा फायदा है।

जैसे-जैसे तमिलनाडु चुनावों के करीब पहुंच रहा है, बड़ी तस्वीर में एक असंतुलन दिख रहा है। जैसा कि राजनीतिक विश्लेषक एस. सुंदर राजन ने संक्षेप में कहा है, तमिलनाडु में चुनाव केवल ताकत के बारे में नहीं, बल्कि एकजुटता के बारे में होते हैं। फिलहाल, केवल एक ही पक्ष के पास वह एकजुटता मौजूद है।

जब तक एआईडीएमके के भीतर और विपक्षी दलों के बीच कोई बड़ा फेरबदल नहीं होता, या किसी नई ताकत के इर्द-गिर्द कोई अप्रत्याशित एकजुटता नहीं बनती, एम.के. स्टालिन के नेतृत्व वाली डीएमके के सत्ता में बने रहने की स्थिति मजबूत नजर आ रही है। ■

तमिलनाडु में कमजोर विपक्ष के समक्ष स्टालिन द्रमुक की बढ़त को लेकर आश्वस्त लगते हैं

प्रदेश में भाजपा की दिक्कत यह नहीं कि उसमें आकांक्षा-महत्वाकांक्षा की कोई कमी है, बल्कि यह है कि उसके पास उस राजनीतिक भाषा का अभाव है जो वहां के आम लोगों के दिलों को छू सके

स्वैच्छिक वेतन कटौती सुक्खू का बड़ा कदम

सरकारी किफायत ज्यादा महत्व की चीज, इसके लिए हिमाचल के कदम का अनुसरण होना चाहिए

अरविन्द मोहन

इसी 21 मार्च को हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री सुखविंदर सिंह सुक्खू ने राज्य का वार्षिक बजट पेश करते हुए एक क्रांतिकारी काम किया। अफसोस यह है कि उसकी चर्चा उस हिसाब से नहीं हुई। शायद ईरान-इसराइल-अमेरिका युद्ध के कारण ऐसा हुआ हो। लेकिन मीडिया, खासकर प्रिंट मीडिया में तो दूसरे विषय भी पर्याप्त जगह पा रहे हैं - जी हां, क्रिकेट का आईपीएल टूर्नामेंट तो शुरू होने के पहले से भर-भर पन्ने जगह पाने लगा है। हिमाचल भी इधर क्रिकेट में आयोजन के चलते चर्चा में रहा था - अपने आयोजक अधिकारियों के लिए विमान से मर्सिडीज टैक्सियां लाने-ले जाने के लिए क्योंकि धर्मशाला जैसी छोटी जगह में ऐसी टैक्सियां कोई लेता ही नहीं। संयोग से, क्रिकेट प्रशासन आजकल भाजपाई नेताओं के हाथ में है और सुक्खू साहब कांग्रेसी हैं!

राज्य की वित्तीय परेशानियों के मद्देनजर सुक्खू ने अपना, अपने सभी मंत्रियों, विधायकों, प्रशासनिक अधिकारियों और पुलिस अधिकारियों के वेतन में कटौती करने और इसे छह महीने तक टालने का फैसला किया। विधायकों और छोटे अधिकारियों का वेतन बीस फीसदी कम हुआ है, तो मंत्रियों और बड़े अधिकारियों के वेतन में तीस फीसदी कटौती हुई है। खुद मुख्यमंत्री ने अपना वेतन पचास फीसदी कम कर दिया है। लेकिन छोटे कर्मचारियों और पेंशन वालों के लिए कोई कटौती नहीं हुई है। अब हिमाचल में आर्थिक आपातकाल है या नहीं, यह बहस का विषय हो सकता है लेकिन इस कदम पर कोई बहस नहीं हो सकती और आम तौर पर इसकी तारीफ ही हुई है - शिकायत है, तो यही कि ज्यादा शोर क्यों नहीं मचा।

चर्चा हिमाचल विधानसभा में तो हुई लेकिन विपक्ष के नेता जयराम ठाकुर की आलोचना बजट का आकार घटाने पर केन्द्रित थी और उनकी चिंता राज्य की अर्थव्यवस्था के पीछे जाने की थी। बजट के आकार में कमी को मुख्यमंत्री केन्द्र से मिलने वाले लगभग आठ हजार करोड़ का अनुदान रोके जाने की शिकायत से जोड़ते रहे। दिलचस्प है कि हिमाचल की कटौती की चर्चा कर्नाटक विधानसभा में भी हुई और भाजपा विधायक वी सुनील कुमार ने कर्नाटक के बजट की 14 फीसदी रकम सब्सिडी पर और एक लाख करोड़ रुपये से ज्यादा रकम चुनावी रेवड़ियों पर खर्च का हवाला देते हुए हिमाचल जैसी स्थिति आने की चेतावनी दी। हिमाचल में कांग्रेस ने कई वायदे किए थे जिनमें पुरानी पेंशन स्कीम को वापस लाना भी शामिल था। सुक्खू बार-बार आर्थिक तंगी का हवाला देते हुए इनमें से कई योजनाओं पर अमल टालते रहे थे। भाजपा इसे देश भर में मुद्दा बनाती रही थी। पर हिमाचल ही नहीं, अन्य राज्यों के भी ऐसे अनुभव का कोई प्रभाव चुनावी वायदों पर पड़ता नहीं दिखता। अभी घोषित चुनावों में भी हर दल बढ़-चढ़कर वायदे कर रहे हैं।

इसी संदर्भ में मुख्यमंत्री सुक्खू की पहल महत्वपूर्ण है। यह एक नई शुरुआत है। इसमें चुनावी वायदों पर स्वैच्छिक अंकुश के साथ गरीब और अमीर राज्यों की सरकारों के आचरण में फर्क की शुरुआत की संभावना है। और इस लेखक जैसे काफी लोग हैं जिन्हें लगता है कि यह प्रयोग तो भारत सरकार के स्तर पर भी दोहराया जाना चाहिए क्योंकि प्रधानमंत्री दावा जो करें, हम अब भी गरीब देश हैं और सुरक्षा या शान - जिस भी नाम से हो - हमें विकसित देशों जैसे खर्च से बचना चाहिए।

हजारों करोड़ रुपये का विशेष विमान अमेरिकी राष्ट्रपति रख सकते हैं, हमारे लिए वह बोझ है। और अगर कोई देश या प्रांत गरीब है, तो गरीबी का अनुभव और किफायतों का बोझ सिर्फ आम लोग क्यों उठाएं, पहले तो यह काम कथित नेता या अगुआ लोगों को करना चाहिए। उनको विदेशों से या बहुराष्ट्रीय निगमों के अधिकारियों से तुलना नहीं करनी चाहिए। एक न्यूनतम जरूरत का खयाल रखते हुए उन्हें अपने वेतन और सुविधाओं में कटौती करनी चाहिए। चुनाव के समय बड़ी-बड़ी बातें कहने के बाद जनता के पैसे से शीशमहल बनवाने और उड़न खटोले में घूमने से बचना चाहिए। और कहना न होगा कि इस मामले में हिमाचल के फैसलों के अनुसरण में बिहार, ओडिशा, झारखंड और मध्य प्रदेश-जैसे राज्यों को आगे आना चाहिए। और कांग्रेस तथा भाजपा जैसी पार्टियों को दबाव बनाकर अपनी सरकारों के शाहखर्ची पर रोक लगानी चाहिए।

विधानसभा में हिमाचल प्रदेश का बजट पेश करते मुख्यमंत्री सुखविंदर सिंह सुक्खू

> अफसोस कि हिमाचल सरकार के इस कदम की चर्चा उस हिसाब से नहीं हुई। इसे दोहराए जाने की संभावना भी कम ही है। ममता अपने किफायती जीवन को लेकर चाहे जितनी चर्चा में रहती हों, चुनावी अवसर पर हाथ खोलकर खर्च के कई फैसले उन्होंने लिए हैं

चुनावी वायदों का पिटारा खोलते वक्त पार्टियां और नेता उनसे जुड़ी परेशानियां तो भूलते ही हैं, अपने राज्य या मुल्क की आर्थिक स्थिति को लेकर रोना रोने में भी वे होड लगाते हैं, पर कोई भी खर्चों में कमी या किफायत वाले कदम नहीं उठाता। छोटे-छोटे राज्यों के पास सरकारी विमानों का बेड़ा-सा है जिसे नेता और अधिकारी जहां-तहां लिए घूमते रहते हैं। इन पर कोई कायदा-कानून लागू नहीं होता। कभी पार्टियां दूसरे की सरकारों की वित्तीय परेशानियों की चर्चा तो कर लेती हैं लेकिन जब अपनी सरकारों की बारी आती है तो एकदम दूसरा रुख अपना लेती हैं। हिमाचल के आसपास ही महाराष्ट्र में सरकार बनी तो उसको भी चुनावी वायदों को लेकर दिक्कत हुई। कई योजनाएं टलीं और लाडकी बहन योजना समेत कई की लाभार्थियों की सूची में कतर-ब्योंत हुई। लेकिन जैसे ही स्थानीय निकाय के चुनाव आए, उसी महाराष्ट्र सरकार ने दो-दो महीने के एडवांस पैसे लाभार्थियों के खाते में भेजने का फैसला किया। जब अदालत ने इस पर रोक लगाई, तब जाकर फैसला टला। पर इसका राजनीतिक संदेश तो पहुंच ही गया। सबसे गरीब बिहार में चुनाव घोषणा के साथ ही हर महिला के खाते में दस-दस हजार रुपये डाल दिए गए, भले ही बच्चों की छात्रवृत्ति और लड़कियों की स्कूली वर्दी का कार्यक्रम टल गया।

वैसे, अब भी हिमाचल का उदाहरण दोहराए जाने की खबरें आने की संभावना कम ही है। उलटे जो प्रवृत्ति दिन-ब-दिन बढ़ती गई है, उसके ही आगे बढ़ने का अंदेशा है। ममता दीदी को भी चुनावी अवसर पर कई फैसले करने की याद आ गई जो लंबे शासन में भुलाए रही थीं जबकि आज की तारीख में सबसे किफायती जीवन जीने वाली मुख्यमंत्री वही होंगी। और उनको भी अनुभव होगा कि कोई भी दूसरा नेता आज उनंका अनुसरण नहीं कर रहा है, उस माकपा का भी जिसमें नंबूदारीपाद ही नहीं, नायनार और अच्युतानंदन जैसे मुख्यमंत्री हुए हैं। कांग्रेस में भी एंटनी और मनमोहन सिंह का उदाहरण कोई नहीं दोहराता। लेकिन व्यक्तिगत किफायत का अपना जो महत्व हो, सरकारी किफायत मुल्क और प्रदेश के लिए ज्यादा महत्व की चीज है और इसके लिए हिमाचल के इस नए कदम का अनुसरण किया जाना चाहिए। ■

भोंसला सैनिक स्कूल नागपुर में विद्यार्थियों का अभ्यास

सैनिक स्कूलों का यह 'संघीकरण' खतरनाक

ऐसा कदम जिससे सैन्य शिक्षण संस्थानों में हिन्दुत्व की विचारधारा के घुस जाने का है खतरा। इसीलिए उठ रहे हैं सवाल

रश्मि सहगल

भारतीय सशस्त्र बल पारंपरिक रूप से राजनीति से अलग रहे हैं। भारत के आजाद होने के फौरन बाद मांग उठी थी कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वारा स्थापित 'आजाद हिन्द फौज' को भारतीय सेना में मिला दिया जाए। इस मांग को अस्वीकार कर दिया गया और सेना को राजनीति से मुक्त रखने के लिए इसे भंग कर दिया गया। सांप्रदायिक दंगों के दौरान शांति बहाल करने के लिए सेना को ही बुलाया जाता है, क्योंकि उसपर एक निष्पक्ष शक्ति के रूप में भरोसा किया जाता है। लेकिन, अब ये परंपराएं सुरक्षित नहीं।

भारत में सऊदी अरब के 'मुतावीन' जैसी अर्ध-धार्मिक पुलिस फोर्स नहीं है, लेकिन आरएसएस-हिन्दुत्व ब्रिगेड के स्वयंभू रक्षक कानून अपने हाथ में लेते हैं; मुसलमानों की लिंचिंग करते हैं, उन्हें सजा देते हैं, धमकाते हैं और उनसे उगाही करते हैं। दरअसल, भारत ने हाल ही में 'मुतावीन' जैसी एक फोर्स बनाने की दिशा में कदम बढ़ाया है। काशी विश्वनाथ मंदिर में तैनात पुलिसकर्मियों को भगवा धोती-कुर्ता, रुद्राक्ष की माला और त्रिपुंड तिलक पहनाया गया, और उन्हें तीर्थयात्रियों का स्वागत 'हर हर महादेव' के जयघोष के साथ करने को कहा गया।

भारत के इस 'भगवाकरण' ने तब खतरनाक मोड़ ले लिया जब सैनिक स्कूलों को 'पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप' मॉडल के तहत संघ से जुड़े संगठनों को सौंप दिया गया। इससे सैन्य शिक्षण संस्थानों में हिन्दुत्व की विचारधारा के प्रवेश का खतरा पैदा हो गया है। चूंकि सैनिक स्कूल बड़ी संख्या में छात्रों को सशस्त्र बलों में शामिल होने के लिए तैयार करने में मदद करते हैं, इसलिए इसका नतीजा यह हो सकता है कि हमारे धर्मनिरपेक्ष सशस्त्र बल, हिन्दुत्व ब्रिगेड की ही एक शाखा में तब्दील हो जाएं।

पहले, स्वायत्त सैनिक स्कूल सोसाइटी रक्षा मंत्रालय के दिशा-निर्देशों के तहत 33 सैनिक स्कूल चलाती थी। इनमें 16,000 छात्र पढ़ते थे, और उनमें से 25-30 फीसद को भारतीय सशस्त्र बलों की विभिन्न प्रशिक्षण अकादमियों में भेजा जाता था। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने आधिकारिक तौर पर कहा है कि सैनिक स्कूलों ने सशस्त्र बलों को 7,000 से अधिक अधिकारी दिए हैं।

2021 में, केन्द्र सरकार ने निजी क्षेत्र के लिए भी इन स्कूलों के दरवाजे खोल दिए। देश में 100 करोड़ के बजट के साथ 100 नए सैनिक स्कूल खोलने की योजना की घोषणा की गई। एक नया सैनिक स्कूल शुरू करने के लिए बस 'जमीन, भौतिक और बुनियादी आईटी ढांचा, वित्तीय संसाधन और कर्मचारी' की जरूरत थी। चुने गए स्कूलों को सरकार से 1.2 करोड़ रुपये तक की वित्तीय मदद मिलती और उन्हें एक विशेष वर्टिकल (मॉडल) के रूप में चलाने की तैयारी हुई जो रक्षा मंत्रालय के मौजूदा सैनिक स्कूलों से अलग और भिन्न था।

आरटीआई जवाबों और सरकारी प्रेस रिलीज के आधार पर 'रिपोर्टर्स कलेक्टिव' द्वारा पुष्टि किए गए इस आसान क्राइटेरिया से पता चला कि 'अब तक हुए 40 सैनिक स्कूल समझौतों में से, कम-से-कम 62 प्रतिशत समझौते आरएसएस और उससे जुड़े संगठनों, भाजपा नेताओं, उनके राजनीतिक सहयोगियों और दोस्तों, हिन्दुत्व संगठनों और अन्य हिन्दू धार्मिक संगठनों से जुड़े स्कूलों को दिए गए' (3 अप्रैल 2024)। मई 2025 तक, 46 और स्कूलों को मंजूरी मिल गई।

इनमें से कई आवंटियों पर गंभीर सवाल उठते हैं। विश्व हिन्दू परिषद की उग्रवादी महिला शाखा, दुर्गा वाहिनी की संस्थापक साध्वी ऋतंभरा इनमें से एक हैं। उनके वृंदावन स्थित स्कूल का नाम 'संविद गुरुकुलम गर्ल्स सैनिक स्कूल' है। 6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद गिराए जाने से पहले, मुसलमानों के खिलाफ भावनाएं भड़काने में ऋतंभरा ने अहम भूमिका निभाई थी। बाबरी मस्जिद गिराए जाने की जांच करने वाले लिब्रहान आयोग ने उन्हें उन 68 लोगों में शामिल किया था, जिन्हें देश को 'सांप्रदायिक कलह के कगार' पर पहुंचाने के लिए जिम्मेदार माना गया था।

सेंट्रल हिन्दू मिलिट्री एजुकेशन सोसाइटी द्वारा संचालित भोंसला मिलिट्री स्कूल (बीएमएस), नागपुर को भी सैनिक स्कूल के तौर पर चलाने की मंजूरी मिली। इस स्कूल की स्थापना 1937 में हिन्दू दक्षिणपंथी विचारक बी.एस. मुंजे ने की थी।

2006 के नांदेड़ बम धमाके और 2008 के मालेगांव धमाकों की जांच के दौरान, महाराष्ट्र एंटी-टेरर स्क्वॉड और अन्य एजेंसियों ने खुलासा किया कि साजिश में शामिल लोगों ने बीएमएस में हथियारों और विस्फोटकों का प्रशिक्षण लिया था। परिसर में आयोजित 40-दिवसीय प्रशिक्षण शिविर, जिसमें 54 लोगों को प्रशिक्षित किया गया था, का संबंध बजरंग दल के उन कार्यकर्ताओं से था, जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने मस्जिदों और अन्य ठिकानों पर बम धमाके किए थे। 2025 में, मालेगांव धमाके के 17 साल बाद, मुंबई की एक विशेष एनआईए अदालत ने सभी सात आरोपियों को बरी कर दिया।

आंध्र प्रदेश के नेल्लोर में अडानी समूह द्वारा संचालित अडानी वर्ल्ड स्कूल को भी सैनिक स्कूल का दर्जा मिल गया है। समूह पर अमेरिकी सरकार ने सोलर पावर के ठेके के लिए अरबों डॉलर की रिश्वत और धोखाधड़ी की साजिश रचने का आरोप लगाया है, और उन पर अमेरिकी सिक्योरिटी नियमों के उल्लंघन का भी आरोप है। ज्यादातर नए सैनिक स्कूल भाजपा नेताओं या उनके ट्रस्टों को सौंपे गए हैं। ये स्कूल देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। उदाहरण के लिए, अरुणाचल प्रदेश के तवांग सैनिक स्कूल का मालिकाना हक राज्य के मुख्यमंत्री पेमा खांडू के पास है। खांडू के भाई त्सेरिंग ताशी, जो भाजपा विधायक हैं, इसके प्रबंध निदेशक हैं।

गुजरात के मेहसाणा में, मोतीभाई आर. चौधरी सागर सैनिक स्कूल, दूधसागर डेयरी से जुड़ा है। इस डेयरी के अध्यक्ष अशोककुमार भवसंगभाई चौधरी हैं, जो मेहसाणा में भाजपा के महासचिव रह चुके हैं। इसी तरह, बनासकांठा का बनास सैनिक स्कूल का प्रबंधन, बनास डेयरी के अंतर्गत आने वाले 'गलबाभाई नानजीभाई पटेल चैरिटेबल ट्रस्ट' द्वारा किया जाता है। इस ट्रस्ट के प्रमुख शंकर चौधरी हैं, जो गुजरात विधानसभा के अध्यक्ष हैं। यही पैटर्न उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान में भी देखने को मिलता है। वर्ष 1978 से, आरएसएस 'विद्या भारती' के बैनर तले स्कूलों का एक नेटवर्क चला रहा है। अभी यह 12,065 औपचारिक स्कूल संचालित करता है, जिनमें 3,158,658 विद्यार्थी हैं; इस तरह यह भारत में निजी स्कूलों के सबसे बड़े नेटवर्कों में एक है। अपनी वेबसाइट पर, विद्या भारती ने अपने मिशन के बारे में कहा है कि उसका उद्देश्य 'एक ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण करना है, जो हिन्दुत्व के प्रति समर्पित हो और जिसमें देशभक्ति का प्रबल जज्बा भरा हो।'

> अडानी ग्रुप द्वारा संचालित गहरे पानी के बंदरगाह के पास नेल्लोर में स्थित अडानी वर्ल्ड स्कूल को सैनिक स्कूल की संबद्धता भी मिल गई है। ज्यादातर नए सैनिक स्कूल भाजपा नेताओं या उनके ट्रस्टों को सौंपे गए हैं

एक रिटायर्ड मेजर जनरल ने नाम न बताने की शर्त पर कहा, 'यह पूरी तरह से गैर-संवैधानिक है। ये नए सैनिक स्कूल न सिर्फ सेना के गैर-राजनीतिक चरित्र को बदल देंगे, बल्कि भारतीय लोकतंत्र भी खतरे में पड़ जाएगा। सरकार को मौजूदा राष्ट्रीय इंडियन मिलिट्री कॉलेज और स्कूलों को मजबूत करने पर ध्यान देना चाहिए था। उन्हें राष्ट्रीय संस्थानों, खासकर रक्षा संस्थानों से जोड़कर, सरकार देश के लिए एक ऐसा खतरा पैदा कर रही है, जिसके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। इससे रक्षा बलों में बहुसंख्यकवादी और सांप्रदायिक सोच का आना तय है।"

सेना के पूर्व डिप्टी चीफ, लेफ्टिनेंट जनरल जमीरुद्दीन शाह का मानना है कि मौजूदा सरकार 'सेना को ऐसे लोगों से भरना चाहती है, जिन्हें एक खास विचारधारा में ढाल दिया गया हो। इसका मतलब यह नहीं है कि पहले हम धार्मिक नहीं थे। बात बस इतनी थी कि कुछ सीमाएं पार नहीं की जाती थीं। सरकार शायद भूल रही है कि इस रास्ते को चुनकर, वे हमारे गले में एक फंदा डाल रहे हैं। उन दूसरे समुदायों के सैनिकों का क्या होगा, जो अपने देश की सेवा करना चाहते हैं?'

अग्निवीर योजना की भी कड़ी आलोचना करते हुए शाह ने कहा, 'मेरे अनुभव के अनुसार, सबसे बेहतरीन सैनिक 25-35 वर्ष की आयु वर्ग के होते हैं। लेकिन अग्निवीर योजना के तहत, ये नौजवान 18 साल की उम्र में सेना में शामिल होते हैं और 22 तक बाहर हो जाते हैं।' लेफ्टिनेंट जनरल प्रकाश मेनन (सेवानिवृत्त), जो वर्तमान में तक्षशिला संस्थान के रणनीतिक अध्ययन कार्यक्रम के निदेशक हैं, ने सरकार और निजी पक्षों के बीच पनप रहे उस गठजोड़ के प्रति आगाह किया है, जिसका उद्देश्य वैचारिक रूप से शिक्षा के ऐसे पक्षपाती संस्करण को बढ़ावा देना है, जो संविधान में निहित मूल्यों से कोसों दूर है। ■

मनमोहन की नजर में दुनिया

लोकतंत्र दबाव में है। अब यह हम पर है कि हम उन मामलों पर समझौता न करें जिन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए जरूरी मानते हैं। इसी पर निर्भर है हमारी आज़ादी

डॉ. एंजेला मर्केल

आज डॉ. मनमोहन सिंह के सम्मान में दिए मेरे भाषण में लोगों की क्या दिलचस्पी हो सकती है? आखिर, वह 2004 में भारत के प्रधानमंत्री बने, 2014 तक पद पर रहे। और मैं जर्मनी की ऐसी पूर्व चांसलर हूं, जिसे सक्रिय राजनीति को छोड़े चार साल से भी ज्यादा हो चुका है। फिर भी, मनमोहन सिंह ट्रस्ट की ओर से उपिंदर सिंह ने जब मुझे निमंत्रण भेजा, तो उसे स्वीकार करना मुझे अच्छा क्यों लगा?

सबसे पहली और अहम बातः मनमोहन सिंह के साथ 10 साल तक का मेरा अनुभव शानदार रहा। वह एक खास हस्ती थे। पहली मुलाकात में ही मुझे यह बात महसूस हो गई थी। वह लोगों को अपनी ओर खींचने की क्षमता रखते थे, भले ही उनके हाव-भाव या बातचीत से ऐसा न लगता हो। वह मुझसे 20 साल बड़े थे। हमारी पहली मुलाकात अप्रैल 2006 में जर्मनी में 'हैनोवर मेसे' के उद्घाटन पर हुई थी, जो तब दुनिया का सबसे बड़ा औद्योगिक मेला था। इसमें भारत को 'साझेदार देश' के तौर पर बुलाया गया था।

मनमोहन सिंह की जिस बात ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया, वह थी उनकी चौकस और जिज्ञासु नजर- जिसमें अनुभव और निश्छलता का अद्भुत मेल झलकता था। वह शांत-स्थिर और सौम्य होने के साथ-साथ बेहद दृढ़-निश्चयी थे। भारत के पहले ऐसे प्रधानमंत्री के तौर पर, जो हिन्दू नहीं थे और सिख अल्पसंख्यक समुदाय से आते थे, उन्होंने उस राष्ट्र के गौरव का प्रतिनिधित्व किया जो अपनी धार्मिक, जातीय और भौगोलिक विविधता में ही एकरूपता और एकता को तलाशता है। उन्होंने यह सब बिना बोले अपने व्यवहार से किया। उनकी शख्सियत में एक स्वाभाविक अधिकार-भाव था, लेकिन वह किसी को डराने वाले नहीं लगते थे; बल्कि उन्होंने मुझे बेझिझक सवाल पूछने और खुलकर बातचीत करने का हौसला दिया।

उन्होंने बिना किसी उलाहने के, लेकिन पूरी दृढ़ता के साथ उन आपत्तियों की ओर इशारा किया, जो भारत जैसे उभरते देशों को जर्मनी समेत अन्य समृद्ध औद्योगिक राष्ट्रों से हैं। तब से, मैंने भारत सहित अन्य उभरते देशों की परिस्थितियों और उनकी चुनौतियों को और भी करीब से समझने का प्रयास किया। मनमोहन सिंह के साथ हुई बातचीत जैसी चर्चाओं से दुनिया को देखने का मेरा नजरिया स्पष्ट और पैना हुआ।

चांसलरी में मेरी डेस्क पर एक ग्लोब रहता था। एक समय ऐसा आया, जब मैंने ग्लोब और नक्शे के फर्क के बारे में सोचना शुरू किया। ऐसा करते हुए, मुझे अहसास हुआ कि मेरा दुनिया को देखने का नजरिया, अन्य यूरोपियनों की तरह ही, यूरोप-केन्द्रित था। ग्लोब पर, दुनिया की हर जगह से ग्लोब के केन्द्र की दूरी एक होती है; किसी भी जगह को खास तौर पर उभारा नहीं जाता। लेकिन दुनिया के नक्शे पर, स्थिति अलग होती है-वहां एक केन्द्र होता है और कुछ किनारे होते हैं। केन्द्र कहां होगा, यह मनमाने ढंग से तय किया जाता है। मैं ऐसे नक्शों को देखते हुई बड़ी हुई जिनमें धरती का दूसरा सबसे छोटा महाद्वीप -यूरोप- हमेशा केन्द्र में होता। बहुत बाद में अहसास हुआ कि यूरोप दुनिया की नाभि नहीं। लेकिन जो बात मुझे बहुत बाद में समझ आई, वह मनमोहन सिंह के लिए बचपन से ही एक जानी-पहचानी सच्चाई थी।

मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री रहते दुनिया में जबरदस्त बदलाव आया। दुनिया का आर्थिक और राजनीतिक महत्व जी-7 से हटकर ब्रिक्स जैसे उभरते देशों के समूह की ओर चला गया। हाल के सालों में जो बातें बिल्कुल पक्की और अटल लगती थीं, वे भी हिल गई हैं। मैं तीन बातों का जिक्र करती हूंः यूरोप में, रूस के यूक्रेन पर हमले से देशों की क्षेत्रीय अखंडता के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ, जिससे दूसरे विश्व युद्ध के बाद बनी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में हर सदस्य देश के लिए तय क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता के अधिकार को कुचल दिया गया।

बहुपक्षवाद दबाव में है। राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप के नेतृत्व में अमेरिका डब्ल्यूएचओ, डब्ल्यूटीओ, पेरिस जलवायु समझौते जैसी बाध्यताओं को छोड़ रहा है या उन्हें कमजोर कर रहा है। वह खुले तौर पर एकतरफा कार्रवाई करते हैं। सहयोग की पुरानी व्यवस्था की जगह अब एक ऐसी व्यवस्था ले रही है, जहां कानून की ताकत के बजाय ताकतवर का कानून चलेगा।

इसमें सोशल मीडिया और एआई की वजह से पैदा हुई नई संभावनाओं को भी जोड़ लें, जो सच को झूठ और झूठ को सच में बदलने की क्षमता रखती हैं। इसका हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं और आजादी के साथ हमारे सह-अस्तित्व पर गंभीर असर पड़ता है। यह सोचना होगा कि समाज के अन्य समूहों के साथ सह-अस्तित्व में रहने के लिए हमें बच्चों की शिक्षा और पेशेवर जीवन में किन सिद्धांतों पर चलना चाहिए। साथ ही, यह भी कि क्या लोकतांत्रिक नियमों के प्रति खुद को समर्पित करना अब भी सार्थक है। इन सब बातों का मनमोहन सिंह से क्या लेना-देना?

मेरा मानना है कि उनका काम हमें नई दिशा दे सकता है। 19 जुलाई 2005 को, उन्होंने अमेरिकी कांग्रेस के दोनों सदनों को संबोधित करते हुए कहा थाः 'किसी लोकतंत्र की असली कसौटी यह नहीं कि संविधान में क्या लिखा है, बल्कि यह है कि वह जमीन पर कैसे काम करता है।' उन्होंने भारत के संदर्भ में कहा कि लोकतंत्र की अनिवार्य विशेषताएं हैंः एक स्वतंत्र चुनाव आयोग की देखरेख में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव; कानून के शासन की गारंटी देने वाली और संविधान की रक्षा करने वाली स्वतंत्र न्यायपालिका; निडर प्रेस; अल्पसंख्यकों की सुरक्षा; और नागरिक समाज संगठनों के लिए बेरोकटोक काम करने की गुंजाइश। सुचारु लोकतंत्र के लिए ये महत्वपूर्ण हैं।

जो बात तब लागू होती थी, वह आज और भी प्रासंगिक है। लोकतंत्र दबाव में है, खासकर जर्मनी में। अब यह हमपर है कि हम उन मामलों पर समझौता न करें जिन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए जरूरी मानते हैं। इसी पर निर्भर करेगा कि क्या हम आजादी से जी पाएंगे। अब हम लोकतांत्रिक व्यवस्था को एक शाश्वत सत्य या एक ऐसी चीज के तौर पर नहीं ले सकते जो हमें अपने-आप मिल गई हो।

ट्रंप के नेतृत्व में अमेरिका अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं को छोड़ रहा है या उन्हें कमजोर कर रहा है। वह खुल कर एकतरफा कार्रवाई करता है। सहयोग की पुरानी व्यवस्था की जगह अब एक ऐसी व्यवस्था ले रही है, जहां कानून की ताकत के बजाय ताकतवर का कानून चलेगा

फाइल फोटो

पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के साथ पूर्व जर्मन चांसलर एंजेला मर्केल

अहम देश जो भी करें, हमें बहुपक्षीय सहयोग के प्रति फिर से समर्पित होना होगा। मनमोहन सिंह ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के अपने कई भाषणों में इस पर जोर दिया था। इनमें से एक भाषण में, सितंबर 2013 में, उन्होंने कहा था कि सदस्य देशों का सबसे ज्यादा फायदा तब होता है जब वे संयुक्त राष्ट्र चार्टर के हर शब्द और उसकी भावना का पालन करते हैं। इसका मतलब था कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय के बीच ज्यादा से ज्यादा आम सहमति बनाने की कोशिश करना, और ऐसा करते समय, विकास के अलग-अलग चरणों में मौजूद देशों की जरूरतों और जिम्मेदारियों के बीच सही संतुलन बनाना। मानव-जनित जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता की सुरक्षा जैसी वैश्विक चुनौतियों के लिए दुनिया भर के देशों का मिलकर कदम उठाना जरूरी है। भारत और जर्मनी, दोनों ही पेरिस जलवायु समझौते के साथ-साथ, विभिन्न देशों की 'साझी लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारियों' के सिद्धांत के भी हस्ताक्षरकर्ता हैं। एक उभरते हुए देश के प्रधानमंत्री के तौर पर मनमोहन सिंह के लिए यह सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण था, लेकिन इस बात पर जोर देते हुए, वह असल में सभी विकासशील देशों की ओर से बोल रहे थे। हम इस बात पर सहमत थे कि शांति और सुरक्षा भरा जीवन तभी संभव है, जब विकास समावशी हो।

वैश्वीकरण की चुनौतियों के संबंध में, जो विशेष रूप से 2008 के वित्तीय संकट के बाद सामने आईं, मनमोहन सिंह का मानना था कि इनपर केवल परस्पर सहयोग से ही काबू पाया जा सकता है, न कि टकराव से। आज, जब संरक्षणवादी व्यापारिक नीतियां विश्व अर्थव्यवस्था के विकास में बाधा डाल रही हैं, तो उनकी चेतावनियां बहुत महत्व रखती हैं क्योंकि सबसे ज्यादा नुकसान सबसे गरीब देशों और उभरते देशों के सबसे गरीब लोगों को ही होता है।

अंत में, यदि तकनीकी विकास हर जगह जीवन को मौलिक रूप से बदल रहे हैं, तो इन तकनीकों को भी बहुपक्षीय समझौतों और नियमों के अधीन होना चाहिए। यह बात व्यक्तिगत और आर्थिक डेटा की सुरक्षा, सोशल मीडिया में जिम्मेदारियों के बंटवारे और एआई के बढ़ते दायरे के नियमन पर भी समान रूप से लागू होती है। मौजूदा परिस्थितियों में यह शायद एक आदर्शवादी सोच लग सकती है- जब इस क्षेत्र के अग्रणी देश या तो अपने खुद के नियम बना रहे हैं (चीन) या किसी भी नियमन को रोक रहे हैं (अमेरिका)- लेकिन इन क्षेत्रों में भी बहुपक्षीय सहयोग जरूरी है। बदलते विश्व में आने वाली चुनौतियों को देखते हुए, मेरा मानना है कि मनमोहन सिंह के सिद्धांत और उनका राजनीतिक कार्य आज भी एक मार्गदर्शक प्रकाश और प्रेरणा का स्रोत बन सकते हैं। ■

26 फरवरी 2026 को नई दिल्ली में प्रथम मनमोहन सिंह स्मारक व्याख्यान में दिए संबोधन के संपादित अंश

'विश्वगुरु' भारत की सन्नाटे भरी चुप्पी

योगेन्द्र यादव

और कुछ भी हो, यह विश्वगुरु के प्रधानमंत्री का तो नहीं था। अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत का डंका बजाने वाला या कम-से-कम ऐसा गुरूर रखने वाला वाला शख्स भी नहीं था। सच कहें तो यह राजनेता ही नहीं था, और न ही रंगमंच पर डायलॉग बोलता अभिनेता।

अगर पश्चिम एशिया के संकट पर संसद में प्रधानमंत्री का बयान सुना हो, तो आप उस शख्स को पहचान नहीं पाएंगे जिसे पिछले ग्यारह बरस में न जाने किस-किस मंच से सुना होगा। हुंकार, ललकार, फुंकार — सब गायब था। बस सरकार की बोझिल भाषा थी। बुझा हुआ चेहरा था। फीकी आंखें थीं। लिखे हुए भाषण को शब्दशः पढ़ने की चिंता थी, कहीं कोई शब्द इधर से उधर न हो जाए, कहीं वॉशिंगटन से फोन न आ जाए। न जुमले, न ताली पिटाऊ डायलॉग और न कोई चुटकी। मेज थपथपाने वाले भी बीच-बीच में एक थपकी देकर रस्म अदायगी कर रहे थे। इस भाषण को आप एक मैनेजर की रिपोर्ट कह सकते हैं, या फिर मुनीम की बही, या फिर रंगमंच से किनारे कर दिए गए अभिनेता का नेपथ्य में दिया एकालाप। यह एक नेता का संबोधन नहीं था।

होता भी कैसे। पश्चिम एशिया के नवीनतम प्रकरण ने प्रधानमंत्री को कुछ कहने लायक नहीं छोड़ा है। अमेरिका की तमाम लल्लो-चप्पो के बावजूद ट्रंप मोदी जी को घास डालने को तैयार नहीं हैं। ट्रेड डील पर घुटने टेकने के बाद भी ऊपर से भारत के खिलाफ जांच शुरू करवा दी है। सुनते हैं अमेरिका ने ईरान से मध्यस्थता के लिए पाकिस्तान को चुना है, भारत का कहीं कोई नाम नहीं है। युद्ध से दो दिन पहले गले में इसराइली मेडल बंधवाने के बावजूद इसराइल की तरफ से मोदी जी का कहीं कोई नाम नहीं है। भारत में इसराइल को झप्पी मारने को आतुर जमात भले ही खड़ी कर दी गई हो, इसराइल में भारत प्रेम की कोई लहर नहीं है।

नए दोस्त बने नहीं, पुराने जरूर छूट गए। दशकों तक भारत को अपने दोस्तों में गिनने वाला ईरान अब भारत को अपने प्रतिद्वंद्वी खेमे में गिनता है। दोष ईरान का नहीं है। संसद में अपने बयान में प्रधानमंत्री ने बिना नाम लिए ईरान को निशाने पर लिया — व्यावसायिक जहाजों और ऊर्जा स्रोतों को निशाना बनाने पर चिंता जताई। लेकिन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एक शब्द भी अमेरिका और इसराइल द्वारा किए बेवजह और गैर कानूनी हमले पर नहीं बोला। जाहिर है होर्मुज खाड़ी में जिन देशों को जहाज निकालने की अनुमति है, उसमें भारत का नाम नहीं है। सुनते हैं जब मोदी जी ने ईरान के राष्ट्रपति को इस बाबत फोन किया, तो उन्होंने संकट की इस घड़ी में भारत सरकार द्वारा किए बर्ताव की सूची गिनवा दी। रूस भी अब रूठा हुआ दिख रहा है। पहले भारत सरकार ने ट्रंप के आदेश पर रूस का तेल खरीदना बंद कर दिया। खाड़ी संकट आने पर फिर रूस की याद आई तो अब रूस ने मुंह फेर लिया। कहा, अब दोस्त वाला रेट नहीं लगेगा, बाजार का प्रीमियम वाला रेट देना पड़ेगा। कोई सत्तर साल पुरानी दोस्ती में गांठ पड़ गई।

युद्ध के मैदान के बाहर अंतरराष्ट्रीय मंच को देखें, तो वहां भी भारत कहीं नज़र नहीं आता। जब पूरी दुनिया किसी संकट से जूझ रही हो, उस वक्त विश्वपटल पर नेतृत्व की जरूरत होती है, सच्चे नेता की पहचान होती है। जब स्वेज नहर के मुद्दे पर ब्रिटेन और फ्रांस ने मिस्र पर हमला किया था, तब एक आर्थिक और सामरिक तौर पर कमजोर भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भारत खुलकर मिस्र के समर्थन में जुबान खोलने की हिम्मत दिखाई थी, साम्राज्यवादी ताकतों की गुंडागर्दी के खिलाफ भारत ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनमत खड़ा किया था। तब नेहरू की पहचान विश्वपटल पर एक नेता के रूप में बनी थी, भारत का सिर ऊंचा हुआ था। आज दुनिया वह सच सुनने के लिए स्पेन के प्रधानमंत्री के बयान सुनती है, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका की ओर देखती है, श्रीलंका के प्रधानमंत्री की सराहना करती है। भारत की तरफ कोई नहीं देख रहा। विश्वगुरु और दुनिया में डंका बजने जैसे चुटकुले पर अब हंसने का मन भी नहीं करता।

जब बोलना जरूरी हो और कहने को कुछ न हो, तो इधर-उधर की बात करनी पड़ती है। प्रधानमंत्री की भी यही मजबूरी थी। मानवता के हित की अमूर्त बात, युद्ध शुरू करने वालों का नाम लिए बिना शांति की वकालत, सभी पक्षों से तनाव कम करने का खोखला आग्रह। दुनिया के संकट में अपनी संवेदनशीलता और सतर्कता के छोटे दावे, मानो भारत की चिंता का दायरा अब केवल खाड़ी में फंसे भारतीय नागरिकों की सुरक्षा और तेल की उपलब्धि तक तक सीमित रह गया है। उसका ब्यौरा देने में भी सच से किफायत की — यह तो बताया कि भारत के पास तेल का कितना रिजर्व है, लेकिन यह नहीं बताया कि यह सिर्फ एक हफ्ते लायक है। यह नहीं बताया कि चीन ने तीन महीने का रिजर्व बनाया और हमें तीन हफ्ते का भी नहीं। तेल में एथनॉल डालने का श्रेय तो लिया, लेकिन यह नहीं बताया कि पिछले दस वर्ष में देश में तेल खोजने वाली कंपनी ओएनजीसी का भट्ठा किसने बैठाया।

जब पूरी दुनिया के सामने बड़ा संकट हो, और एक नेता देश की सर्वोच्च पंचायत में अपने छोटे फायदे के छोटे ब्यौरे पेश करे, तो उससे सिर्फ उसका कद छोटा नहीं होता। उससे पूरे देश का माथा नीचा होता है। ■

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के संसद में वक्तव्य के दौरान बुझा चेहरा और फीकी आंखें बता रही हैं उनकी मजबूरी

बात महिला आरक्षण की है ही नहीं, माजरा कुछ और

राधा कुमार

सत्ताधारी भाजपा 2027 की जनगणना का इंतजार किए बिना ही सीटों के 'परिसीमन' पर जोर दे रही है। इससे 'नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023' को लागू करना संभव हो पाएगा, जिसके तहत 2029 के चुनावों से पहले महिलाओं के लिए 33 फीसद आरक्षण जरूरी किया गया है। लेकिन क्या ये प्रयास सचमुच महिलाओं के आरक्षण को लागू करने के बारे में है? या फिर कहानी कुछ और है?

24 मार्च को मीडिया ने बताया कि गृहमंत्री अमित शाह ने एनडीए सहयोगियों और 'चुनिंदा' विपक्षी पार्टियों (कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस और वामपंथी पार्टियों को छोड़कर) के साथ बंद दरवाजों के पीछे हुई बातचीत में, विधायी सीटों में 50 फीसद की बढ़ोतरी का प्रस्ताव रखा ताकि इनमें से एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की जा सकें। इस दांव से मौजूदा सांसदों और विधायकों को - जिनमें 85 फीसद पुरुष हैं - अपनी सीटें बरकरार रखने का मौका मिल जाएगा और महिलाओं को भी बढ़ी हुई लोकसभा में 816 में से 273 सीटें मिल जाएंगी।

दक्षिणी राज्यों की चिंताओं को दूर करने के लिए, हर राज्य की सीटों का हिस्सा मौजूदा स्तर पर ही बनाए रखा जाएगा। छह दक्षिणी राज्यों (और केन्द्र शासित प्रदेश पुडुचेरी) के पास लोकसभा की 24 फीसद सीटें हैं। इसके लिए सरकार दो बिल लाएगी- एक राज्य की सीटों को 25-30 साल के लिए फ्रीज करने के लिए, और दूसरा परिसीमन आयोग की नियुक्ति के लिए। यह आयोग 2011 की जनगणना के आंकड़ों को आधार बनाएगा, न कि 2027 की जनगणना को, क्योंकि नई जनगणना के अंतिम आंकड़े इतनी देर से जारी होंगे कि 2029 से पहले परिसीमन संभव नहीं हो सकेगा। 24 मार्च की शाम तक, समाचार माध्यमों ने स्पष्ट कर दिया कि ये चार अलग-अलग प्रस्ताव थेः 1.महिलाओं के लिए 33 फीसद आरक्षण को 2027 की जनगणना से अलग करना, 2.लोकसभा (और राज्य विधानसभाओं) का विस्तार, 3. महिलाओं के लिए 273 सीटें आरक्षित करना (विस्तारित लोकसभा में) और 4. 2011 की जनगणना के आंकड़ों का उपयोग करके परिसीमन करना, साथ ही राज्यवार अनुपात को बनाए रखना।

दूसरे शब्दों में, विधायिका के 50 प्रतिशत विस्तार का जो प्रस्ताव है, उसका महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण से कोई लेना-देना नहीं। लगता है असली मकसद 2027 की जनगणना से पहले और 2029 के चुनावों से पहले विधायिका के विस्तार या परिसीमन को आगे बढ़ाना है, और साथ ही इसे ऐसा दिखाना है कि यह महिलाओं के लिए आरक्षण से जुड़ा मामला है।

इस दांव से मौजूदा सांसदों और विधायकों को – जिनमें 85 फीसद पुरुष हैं – अपनी सीटें बरकरार रखने का मौका मिल जाएगा और महिलाओं को भी बढ़ी हुई लोकसभा में एक-तिहाई आरक्षण

विपक्ष के पास भी हैं अपनी बात अच्छे से रखने वाली महिलाएं

महिलाओं के लिए आरक्षण का बिल सबसे पहले कांग्रेस ने ही 1990 के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव के कार्यकाल में पेश किया था। विधायिका का विस्तार एक पेचीदा मसला है। दक्षिणी राज्यों की जायज चिंताएं हैं, और चुने प्रतिनिधियों से मोहभंग के कारण जनता भी शक की नजर से देखती है। महिलाओं के लिए आरक्षण के मुद्दे को विधायिका के विस्तार के साथ जोड़ने से, विस्तार करने और मौजूदा पुरुष सांसदों को बचाने के दोहरे मकसद पर पर्दा पड़ जाता है।

राज्यों की सीटों के हिस्से को मौजूदा स्तर पर फ्रीज रोक देने का प्रस्ताव दक्षिणी राज्यों को समर्थन के लिए लाया गया है। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन की अगुवाई में इन राज्यों ने लोकसभा के जनसंख्या-आधारित विस्तार का विरोध किया है, क्योंकि इससे उनका हिस्सा पांचवें हिस्से से भी कम रह जाएगा। अब 2011 की जनगणना ही क्यों? 2027 की जनगणना का इंतजार करने से महिला आरक्षण 2034 के आम चुनावों तक टल जाएगा, क्योंकि नई जनगणना के नतीजे शायद 2030 तक उपलब्ध हो पाएंगे।

क्या नरेन्द्र मोदी सरकार 2027 की जनगणना से बचना चाहती है, क्योंकि इसमें जाति-आधारित गिनती शामिल होने की उम्मीद है, और भाजपा चिंतित है कि जाति के आंकड़े प्रतिनिधित्व की मांगों पर न जाने कैसा असर डालें?

शाह बिलों को मौजूदा सत्र में ही पास करवाना चाहते थे। लेकिन विपक्ष के दबाव में संभवतः मानसून सत्र तक टाल दिया। विपक्षी पार्टियों ने राज्य चुनावों के बाद सर्वदलीय बैठक की मांग की है, ताकि प्रस्तावों का अध्ययन कर सकें।

महिलाओं के लिए सीटें आवंटित करने के तरीके पर भी सवाल है। सीटों की संख्या तय करने का अधिकार परिसीमन आयोग को है। आरक्षण को विस्तार से जोड़ने की कोशिश न केवल अनावश्यक है, बल्कि धोखेबाजी भी है। शाह के लिए अहम सवालः महिला आरक्षण अतिरिक्त सीटें के जरिये ही क्यों? क्या इसलिए कि बिल के पक्ष में वोट देने वाले पुरुष सांसदों को भरोसा दिलाया गया था कि उनकी सीटें महिलाओं को आवंटित नहीं की जाएंगी? पुरुष सांसदों को इतना पक्का यकीन कैसे था कि वे दोबारा चुन लिए जाएंगे?

खैर, अब समय आ गया है कि विपक्षी पार्टियां पूरी गंभीरता से महिला उम्मीदवारों की पहचान करना और उन्हें आगे बढ़ाना शुरू करें। जैसा कि 'ऑपरेशन सिंदूर' पर हुई बहस से जाहिर हुआ, विपक्ष के पास भी अपनी बात अच्छे से रखने वाली महिलाएं मौजूद हैं। ■

राधा कुमार इतिहासकार और नीति विश्लेषक हैं

मार्च में दिसंबर की दस्तक बड़े खतरे का संकेत

सबसे बड़ी मार कृषि अर्थव्यवस्था पर। अनाज के साथ बागवानी पर भी विपरीत प्रभाव। श्वसन रोगियों और बुजुर्गों के लिए यह स्थिति बेहद घातक

पंकज चतुर्वेदी

प्रकृति के बदलते मिजाज का गंभीर संकेत है बेमौसम की यह धुंध

उपेन्द्र को अभी मार्च के तीसरे हफ्ते में हलद्वानी से आते हुए मुरादाबाद से रामपुर तक सुबह आठ बजे अचानक कोहरे की वजह से अपनी कार की स्पीड काफी कम कर देनी पड़ी। उन्हें समझ में नहीं आया कि अभी इस तरह दिसंबर की तरह धुंध क्यों छा गई है। पहले तो उन्हें लगा कि हो सकता है कि यह स्मॉग हो, क्योंकि दिल्ली की तरह इस इलाके में भी कभी-कभी ऐसा हो जाता है। लेकिन इसमें कोई गंध नहीं थी और आंखों में जलन भी नहीं हो रही थी। साथ चल रहे एक साथी ने अटकल लगाई कि यह सब ईरान-अमेरिका-इसराइल लड़ाई का नतीजा भी हो सकता है। लेकिन जब वे गाजियाबाद के वसुंधरा में अपने घर पहुंचे, तो बच्चों ने बताया कि सुबह वे देर से वॉक करने निकल पाए क्योंकि ठंड तो थी ही, कोहरा-जैसा हो गया था और सूरज देर से निकला। बीच में एक-दो दिन दिल्ली से लेकर छत्तीसगढ़ और झारखंड तक झमाझम बारिश हुई और कई लोगों को अपने हाफ स्वेटर तक निकालने पड़े। मार्च के अंतिम हफ्ते में भी कई जगह इसी किस्म के दृश्य हैं।

भारतीय कैलेंडर में मार्च का महीना उस संधि काल का प्रतीक है जहां ठंड की विदाई होती है और गर्मी दस्तक देने लगती है। लोग कंबल-स्वेटर को विदा कर देते हैं, मोटी चादरें निकाल लेते हैं, पंखे घूमने लगते हैं, सुबह-शाम का मौसम अच्छा लगता है और दिन की धूप तनिक गर्मी देने लगती है। पलाश के फूल दहकते हैं और गेहूं की बालियां सूरज की सुनहरी किरणों को सोखकर पकने की ओर बढ़ती हैं। किंतु इस बार उत्तर भारत में यह समय डराने वाला हो गया है। रही-सही कसर बरसात और ओलावृष्टि ने पूरी कर दी है क्योंकि इससे फसलें तक चौपट हो गईं। दिल्ली, गाजियाबाद, कानपुर और लखनऊ जैसे शहरों में अचानक छा जाने वाला घना कोहरा कोई साधारण मौसमी फेरबदल नहीं है। दरअसल, प्रकृति का संतुलन बुरी तरह डगमगा चुका है। इसे मौसम वैज्ञानिकों ने जलवायु आपातकाल की संज्ञा दी है।

सामान्यतः कोहरा सर्दियों की रात में तब बनता है जब धरती तेजी से अपनी गर्मी छोड़ती है और नमी का स्तर अधिक होता है। लेकिन इस साल फरवरी के अंतिम सप्ताह में अचानक बढ़ी तपिश ने धरती की ऊपरी सतह को अत्यधिक गर्म कर दिया। जब बंगाल की खाड़ी से आने वाली नमी युक्त पूर्वी हवाएं इस गर्म सतह के संपर्क में आईं और उसी दौरान रात के तापमान में अचानक छह से सात डिग्री की गिरावट दर्ज की गई, तो विकिरण की प्रक्रिया ने एक घना आवरण तैयार कर दिया। इसे विज्ञान की भाषा में विकिरण कोहरा कहा जाता है। वायुमंडल के निचले स्तर पर हवा की स्थिरता ने उस धुंध और प्रदूषण के मिश्रण को जमने का अवसर दे दिया, जिसे हम अक्सर कड़ाके की ठंड में देखते हैं।

दिन और रात के तापमान में आ रहा यह भारी अंतर प्रकृति के बदलते मिजाज का गंभीर संकेत है। मौसम विभाग के आंकड़ों के अनुसार, उत्तर भारत के कई हिस्सों में दिन का तापमान सामान्य से 8 से 12 डिग्री सेल्सियस अधिक दर्ज किया गया है, जबकि रातें तुलनात्मक रूप से ठंडी बनी हुई हैं। इस तापमान की गड़बड़ी का बड़ा कारण पश्चिमी विक्षोभ का अत्यंत कमजोर होना है।

आमतौर पर ये विक्षोभ बारिश और बर्फबारी लाते हैं जो तापमान को नियंत्रित रखते हैं। इनकी अनुपस्थिति के कारण आसमान पूरी तरह साफ है, जिससे दिन में सूरज की किरणें सीधे धरती को तपा रही हैं। इस बार जनवरी और फरवरी में करीब 60 प्रतिशत कम बारिश हुई। इसके चलते मिट्टी में नमी नहीं थी। दिन की गर्मी वाष्पीकरण में खर्च होने के बजाय सीधे सतह को गर्म करती है। रात में, साफ आसमान होने के कारण धरती की गर्मी तेजी से वापस अंतरिक्ष में चली जाती है जिससे रातें ठंडी हो जाती हैं। इसके साथ पश्चिमी भारत के ऊपर बने उच्च वायुदाब के क्षेत्रों के कारण हवाएं नीचे की ओर दब रही हैं। यह दबती हुई हवा गर्म हो जाती है और बादलों को बनने से रोकती है, जिससे दिन में 'हीटवेव' जैसी स्थिति बन रही है।

इस अनियमित तापमान से उपज रहे कोहरे और फिर, कई इलाकों में भारी बारिश, काफी तेज हवा और ओलावृष्टि के व्यापक और दूरगामी नुकसान हैं। सबसे बड़ी मार हमारी कृषि व्यवस्था पर पड़ रही है। रबी की फसल, विशेषकर गेहूं, इस समय अपने पकने के अंतिम चरण में है। कोहरे के कारण बढ़ने वाली नमी और फिर अचानक निकलने वाली तेज धूप फसलों में पीला रतुआ और विभिन्न प्रकार की फफूंद जनित बीमारियों को जन्म दे रही हैं। केवल अनाज ही नहीं, बल्कि बागवानी फसलों जैसे आम के बौर पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है। कई जगह सब्जी की फसलें प्रायः नष्ट ही हो गई हैं। अचानक आई नमी और ठंडक ने फूलों को भी झाड़ दिया है, जिससे उत्पादन में भारी गिरावट की आशंका प्रबल हो गई है। कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि यदि यह अनिश्चितता बनी रही, तो खाद्य सुरक्षा के मोर्चे पर हमें बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ सकता है।

रबी की फसल, विशेषकर गेहूं, इस समय अपने पकने के अंतिम चरण में है। फसलों में पीला रतुआ और विभिन्न प्रकार की फफूंद जनित बीमारियों को जन्म दे रही हैं। आम जैसी बागवानी फसलों पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है

पारिस्थितिकीय नुकसान के साथ-साथ यह मानवीय स्वास्थ्य के लिए भी बड़ा संकट है। मार्च के इस कोहरे में केवल जलवाष्प नहीं है, बल्कि इसमें वातावरण में मौजूद सूक्ष्म धूल कण और जहरीली गैसें भी फंसी हुई हैं।

यह एक प्रकार का विषैला धुआं है जो सीधे फेफड़ों पर प्रहार करता है। श्वसन रोगियों और बुजुर्गों के लिए यह स्थिति बेहद घातक है। यातायात के क्षेत्र में होने वाली बाधाएं आर्थिक तंत्र को प्रभावित करती हैं। विमानों का मार्ग परिवर्तन और रेलगाड़ियों का विलंब केवल असुविधा नहीं है, बल्कि यह करोड़ों रुपये के ईंधन की बर्बादी और कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि का कारण भी है। यह एक ऐसा दुष्चक्र है जहां जलवायु परिवर्तन के कारण कोहरा बनता है और उस कोहरे के कारण होने वाले उपाय पुनः पर्यावरण को दूषित करते हैं।

मार्च में दिसंबर जैसे दृश्य बड़ी आपदा की आहट हैं। यह हमारी जीवनशैली और विकास के उन मॉडलों पर सवालिया निशान खड़ा करता है जो प्रकृति की कीमत पर तैयार किए गए हैं। हिमालयीन क्षेत्रों में पश्चिमी विक्षोभ की बदलती आवृत्ति और मैदानी इलाकों में बढ़ता कंक्रीट का जाल - दोनों ही इस संकट के लिए उत्तरदायी हैं। ■

ईरान की जीत के लिए अमेरिका की हार जरूरी नहीं

लेकिन युद्ध का खामियाजा भरने वाले देश भी युद्ध के असली खलनायकों से अपील करने का साहस नहीं जुटा पा रहे

आकार पटेल

मैं चाहता हूं कि ईरान जीते। जीत का क्या मतलब है? ईरान इसे इस तरह परिभाषित करता है: अमेरिका को ईरान पर लगे दशकों पुराने प्रतिबंध हटाने होंगे; उसे अरब देशों में अपने सैन्य अड्डे खत्म करने होंगे; इजसराइल को लेबनान पर अपना कब्जा खत्म करना होगा; और ईरान को उन नुकसानों के लिए मुआवजा मिलना चाहिए जो उसे पिछले कई सालों में और इस युद्ध के दौरान उठाने पड़े हैं।

हालांकि अमेरिकी और इसराइली बमबारी में एक हजार से ज्यादा ईरानियों की मौत हो चुकी है। यह संख्या आगे भी बढ़ने की आशंका है। फिर भी यदि ईरान इन चीजों को हासिल करने में सफल हो जाता है, तो यह उसकी पूर्ण विजय होगी।

मैं क्यों चाहता हूं कि ईरान जीते? सबसे बुनियादी स्तर पर, दो परमाणु-हथियारों से लैस विरोधियों—इसराइल और अमेरिका—के खिलाफ इस लड़ाई में वह कमज़ोर पक्ष है। बेशक, वह फौजी तौर पर उनसे कमजोर है, लेकिन वह बेदम नहीं है, जैसा कि दुनिया ने 28 फरवरी से देखा है। उसमें ज्यादातर दूसरे देशों के मुकाबले कहीं ज्यादा दृढ़-संकल्प है। ईरान का समर्थन करने का मेरा एक और सहज कारण यह है कि हमारी ही तरह, वह भी एक ऐसा देश है जिसे 'पश्चिम' कहे जाने वाले देशों ने रौंदा है। इसी वजह से भी मैं उनके साथ एकजुटता महसूस करता हूं।

और गहराई से देखें, तो यहूदी देश इसराइल और अमेरिका ऐसे उपनिवेशवादी राज्य हैं जो एक ऐसी दुनिया पर जबरदस्ती और बेरहमी से खुद को थोप रहे हैं, जो उन्हें नहीं चाहती। उनका और उनके कामों का विरोध किया जाना चाहिए। ईरान पर अमेरिका के प्रतिबंध उसे वैश्विक बैंकिंग व्यवस्था से अलग-थलग कर देते हैं, जिससे दुनिया के साथ व्यापार करना मुश्किल हो जाता है; इन प्रतिबंधों का मकसद न केवल ईरानी सरकार को कमजोर करना है, बल्कि ईरानियों को गरीब बनाए रखना भी है। ये संयुक्त राष्ट्र के प्रतिबंध नहीं हैं, बल्कि अमेरिका द्वारा एकतरफा तौर पर थोपे गए हैं। अमेरिका अपनी आर्थिक ताकत का इस्तेमाल उन देशों को परेशान करने के लिए करता है जिन्हें वह पसंद नहीं करता—जैसा कि हम वेनेज़ुएला और क्यूबा के मामले में भी देख रहे हैं।

ईरान की यह मांग कि इन पाबंदियों को हटा दिया जाए, बिल्कुल सही है। मैं चाहता हूं कि ये खत्म हों, और इसके लिए ईरान को जीतना ही होगा।

अमेरिका के बहरीन, कुवैत, इराक, यूएई, जॉर्डन और सऊदी अरब में सैन्य अड्डे हैं। आखिर उसके इतने सारे सैनिक और हथियार इन देशों में क्यों हैं? अमेरिका नाम को छोड़कर, असल में एक साम्राज्य ही चला रहा है। अमेरिकी सेना को दुनिया को धमकाना नहीं चाहिए, बल्कि अपने देश की सुरक्षा पर ध्यान देना चाहिए। ईरान ने इसी चर्चा की शुरुआत कर दी है।

फोटो: नेटी इमेजेज

खामनेई की हत्या के खिलाफ यमन की हूती प्रभाव वाली राजधानी सना में उतरा जन सैलाब

आज इसराइल वैसा ही है जैसा 40 साल पहले दक्षिण अफ्रीका था, लेकिन उससे भी बदतर। यह एक रंगभेद वाला देश है (यह लाखों लोगों को अपने नियंत्रण में रखता है, जिनके पास न तो वोट देने का अधिकार है और न ही कोई अन्य अधिकार), और कई मानवाधिकार संगठनों—जिनमें वह संगठन भी शामिल है जिसका मैं प्रतिनिधित्व करता हूं, और यहां तक कि इसराइल के भीतर के संगठन भी—के अनुसार यह नरसंहार का दोषी है। इसने अपनी सैन्य शक्ति और लगभग असीमित अमेरिकी हथियारों तथा फंडिंग तक अपनी पहुंच का इस्तेमाल करके मध्य पूर्व में आतंक फैलाया है, और अब इसका अंत होना ही चाहिए। ईरान की जीत इस समस्या को सुलझाने में भी बहुत मददगार साबित होगी।

ये वे कारण हैं जिनकी वजह से मैं चाहता हूं कि ईरान जीते। मुझे ऐसा क्यों लगता है कि ईरान का जीतना संभव है, और शायद इसकी पूरी संभावना भी है? इसका जवाब जाहिर है कि, ऊपरी तौर पर कुछ भी क्यों न दिखे, इस युद्ध की कमान ईरान के ही हाथों में है। अमेरिका और इसराइल, ईरान और वहां के लोगों को भयावह यातनाएं दे सकते हैं, और उन्होंने ऐसा किया भी है। उन्होंने स्कूली छात्राओं की हत्या की है और बुनियादी ढांचे पर हमले किए हैं। उन्होंने ईरानी नेताओं की हत्याएं की हैं, और पूरी संभावना है कि वे आगे भी ऐसे और नेताओं की हत्याएं करेंगे। लेकिन वे 'सत्ता परिवर्तन' करने में नाकाम रहे हैं, जो कि इस युद्ध का मुख्य उद्देश्य था। 'इस्लामी गणतंत्र ईरान' आज भी कायम है।

ईरान की प्रतिक्रिया केन्द्रित और सीमित रही है: वह समुद्र के रास्ते मध्य पूर्व से तेल, गैस या किसी भी अन्य आपूर्ति को बाहर जाने या अंदर आने की अनुमति नहीं देगा। जलमार्ग पर उसका नियंत्रण जितना उसकी हिंसा करने की क्षमता पर आधारित है, उतना ही हिंसा की धमकी पर भी; और असल में यही वह चीज है जिसने व्यापारिक जहाजों को होर्मुज जलडमरूमध्य (स्ट्रेट ऑफ होर्मुज) पार करने की कोशिश करने से रोक रखा है।

जब तक अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप फ़ारस की खाड़ी से जहाजों के आने-जाने पर अपना नियंत्रण नहीं बना लेते, तब तक कच्चे तेल और गैस की कीमतें बढ़ती रहेंगी, जैसा कि युद्ध शुरू होने के बाद से हो रहा है। आज अमेरिकी लोग पेट्रोल और डीजल के लिए ज्यादा पैसे दे रहे हैं, और जैसे-जैसे युद्ध जारी रहेगा, उन्हें और भी ज्यादा पैसे देने पड़ेंगे।

दुर्भाग्य से, पूरी दुनिया भी इस समस्या से दो-चार है। उसे भी इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा; लेकिन अब तक दुनिया ने इस युद्ध को खत्म करने के लिए इसके असली गुनहगारों—यानी असली खलनायकों—अमेरिका और इसराइल से कोई अपील नहीं की है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे इन दोनों देशों से डरते हैं। यही वजह है कि मैं चाहता हूं कि ईरान की जीत हो।

अमेरिका को इस संघर्ष की स्थिति को बदलने के लिए कुछ बड़ा कदम उठाना होगा क्योंकि मौजूदा हालात ईरान के पक्ष में हैं। हत्याओं और अंधाधुंध बमबारी से कोई फायदा नहीं हुआ है

अब से, अमेरिका को इस संघर्ष की स्थिति को बदलने के लिए कुछ बड़ा कदम उठाना होगा, क्योंकि मौजूदा हालात ईरान के पक्ष में हैं। हत्याओं और अंधाधुंध बमबारी से कोई फायदा नहीं हुआ है। उम्मीद है कि अमेरिका कोई बीच का रास्ता निकालेगा, अपनी हिंसा को समाप्त करेगा, और ईरान की कम-से-कम दो मांगों को मान लेगा: भविष्य में किसी भी तरह की हिंसा न करने की गारंटी देना और प्रतिबंधों को हमेशा के लिए हटा लेना। इसराइल से मुझे कोई उम्मीद नहीं है, क्योंकि उसने पिछले कई सालों में यह साबित कर दिया है कि उसे तो बस बेमतलब और कभी न खत्म होने वाली तबाही ही चाहिए।

मैं चाहता हूं कि ईरान जीते, और ऐसा होने के लिए अमेरिका का हारना जरूरी नहीं है। उसे बस अपने तौर-तरीके सही करने होंगे। ■

इसराइल से कोई उम्मीद नहीं है, क्योंकि उसने पिछले कई सालों में यह साबित कर दिया है कि उसे कभी न खत्म होने वाली तबाही ही चाहिए

कांग्रेस बनायेगी, नया असम

खुशहाली के लिए ज़रूरी बदलाव

Photo: GettyImages

कछार और लखीमपुर के बाढ़ प्रभावित मैदानों से लेकर डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया के चाय बागानों तक, कोकराझार और कार्बी आंगलोंग के जनजातीय इलाकों से लेकर बराक घाटी के व्यस्त शहरों तक—असम के कोने-कोने में एक शांत लेकिन बेहद मजबूत भावना आकार ले रही है। यह भावना किसी एक घटना या मुद्दे से नहीं, बल्कि वर्षों के अनुभव, उम्मीदों और निराशाओं के संगम से पैदा हुई है। लोग महसूस कर रहे हैं कि बड़े-बड़े वादों और दावों के बावजूद उनकी रोजमर्रा की जिंदगी आसान नहीं हुई है। बल्कि कई मामलों में असुरक्षा और अनिश्चितता पहले से ज्यादा बढ़ गई है।

हर साल आने वाली बाढ़ असम के लिए एक स्थायी संकट बन चुकी है। मोरीगांव, बारपेटा, कछार, धेमाजी और लखीमपुर जैसे जिले लगभग हर साल जलप्रलय का सामना करते हैं। खेतों में खड़ी फसलें नष्ट हो जाती हैं, घर बह जाते हैं, और हजारों परिवारों की आजीविका खत्म हो जाती है। राहत और मुआवजे की घोषणाएं जरूर होती हैं, लेकिन दीर्घकालिक समाधान की दिशा में ठोस प्रगति अब भी नजर नहीं आती। तटबंध बार-बार टूटते हैं, ब्रह्मपुत्र के किनारे कटाव लगातार जमीन निगलता जा रहा है, और लोगों को हर साल अपनी जिंदगी फिर से शुरू करनी पड़ती है। यह सिर्फ प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि एक मानवीय संकट बन चुका है, जो नीति और योजना की कमी को उजागर करता है।

ग्रामीण असम की अर्थव्यवस्था भी गंभीर चुनौतियों से जूझ रही है। धान, सरसों और सब्जियां उगाने वाले किसान बढ़ती लागत, महंगे बीज और उर्वरक, और अस्थिर बाजार कीमतों के कारण परेशान हैं। उन्हें न तो पर्याप्त सिंचाई सुविधा मिलती है और न ही भंडारण और विपणन की मजबूत व्यवस्था। इसके कारण उन्हें अक्सर अपनी उपज औने-पौने दाम पर बेचनी पड़ती है। दूसरी ओर, चाय बागानों में काम करने वाले मजदूर, जो असम की वैश्विक पहचान का आधार हैं, आज भी कम मजदूरी, अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवाओं और खराब आवास जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। उनके लिए घोषित योजनाएं अक्सर जमीन पर पूरी तरह लागू नहीं हो पातीं, जिससे उनकी स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका है।

> बेरोजगारी का मुद्दा असम के युवाओं के बीच सबसे बड़ी चिंता बनकर उभरा है। नागांव, सिलचर, जोरहाट, डिब्रूगढ़ और गुवाहाटी जैसे शहरों में हजारों युवा सालों तक सरकारी नौकरियों की तैयारी करते हैं, लेकिन भर्ती प्रक्रियाएं अक्सर धीमी, अनियमित और अस्पष्ट होती हैं। कई परीक्षाएं समय पर नहीं होतीं या उनके परिणामों में देरी होती है।

बेरोजगारी का मुद्दा असम के युवाओं के बीच सबसे बड़ी चिंता बनकर उभरा है। नागांव, सिलचर, जोरहाट, डिब्रूगढ़ और गुवाहाटी जैसे शहरों में हजारों युवा सालों तक सरकारी नौकरियों की तैयारी करते हैं, लेकिन भर्ती प्रक्रियाएं अक्सर धीमी, अनियमित और अस्पष्ट होती हैं। कई परीक्षाएं समय पर नहीं होतीं या उनके परिणामों में देरी होती है। इससे युवाओं में निराशा बढ़ती है। मजबूरी में बड़ी संख्या में युवा बेंगलुरु, दिल्ली और अन्य महानगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन के वादे अब तक ठोस अवसरों में पूरी तरह नहीं बदल पाए हैं। छोटे व्यापारी और स्थानीय व्यवसाय भी आर्थिक दबाव में हैं। गुवाहाटी के फैंसी बाजार, सिलचर बाजार और अन्य कस्बों में व्यापारियों को बढ़ती लागत, अस्थिर नीतियों और घटते मुनाफे का सामना करना पड़ रहा है। महंगाई ने आम लोगों की क्रय शक्ति को कम किया है, जिससे बाजार की गतिविधियां प्रभावित हुई हैं। ईंधन, आवश्यक वस्तुओं और दैनिक खर्चों में लगातार वृद्धि ने घरेलू बजट को भी दबाव में डाल दिया है।

भूमि विवाद और बेदखली की घटनाओं ने भी लोगों की चिंता बढ़ाई है। ब्रह्मपुत्र के किनारे बसे इलाकों और जंगल से सटे क्षेत्रों में कई परिवारों को विस्थापन का सामना करना पड़ा है। जबकि भूमि प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को लोग समझते हैं, लेकिन पारदर्शी प्रक्रियाओं और पुनर्वास योजनाओं की कमी ने समुदायों में असुरक्षा की भावना पैदा कर दी है। जनजातीय समूहों और लंबे समय से बसे परिवारों में यह डर गहराता जा रहा है कि उनकी जमीन और पहचान दोनों खतरे में हैं।

पहाड़ी जिलों और बोडोलैंड टेरिटोरियल रीजन में भी समावेशी विकास की मांग तेज हो रही है। इन क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित पहुंच और उच्च शिक्षा संस्थानों की कमी विकास में बाधा बनी हुई है। कई लोगों को लगता है कि विकास कुछ चुनिंदा शहरी क्षेत्रों तक सीमित रह गया है, जबकि राज्य के बड़े हिस्से अब भी पीछे हैं।

एक और महत्वपूर्ण चिंता शासन के केंद्रीकरण को लेकर है। स्थानीय समुदायों को प्रभावित करने वाले कई फैसले बिना पर्याप्त परामर्श के लिए जा रहे हैं। पंचायत, स्थानीय निकाय और सामुदायिक नेता खुद को निर्णय प्रक्रिया से अलग महसूस कर रहे हैं। इससे सरकार और जनता के बीच दूरी बढ़ी है और यह धारणा बनी है कि शासन कम संवेदनशील और दूर होता जा रहा है।

इन सभी परिस्थितियों के बीच असम में एक सीधा सवाल गूंज रहा है वह बदलाव कहां है जिसका वादा किया गया था?

इस सवाल का जवाब कई लोग एक नई दिशा में खोज रहे हैं—एक ऐसी दिशा जो माजुली के कटाव से जूझ रहे लोगों की आवाज सुने, बराक घाटी के युवाओं को अवसर दे, ऊपरी असम के चाय मजदूरों को सम्मान दिलाए और निचले असम के किसानों की समस्याओं को समझे।

असम अब बदलाव की मांग कर रहा है और ये बदलाव कॉंग्रेस लायेगी।

भविष्य की दिशा

नए असम के पांच स्तंभ

Photo: GettyImages

असम का भविष्य उसकी जमीनी हकीकतों पर आधारित होना चाहिए—उसका भूगोल, उसकी अर्थव्यवस्था और सबसे महत्वपूर्ण उसके लोग। इसी सोच के साथ एक नई दृष्टि सामने आती है, जो पांच प्रमुख स्तंभों पर आधारित है और जिसका उद्देश्य राज्य की तात्कालिक समस्याओं के साथ-साथ दीर्घकालिक आकांक्षाओं को भी पूरा करना है।

1. शिक्षा और स्वास्थ्य में व्यापक सुधार

असम के कई जिलों—धुबरी, गोलपाड़ा, करीमगंज, बोंगाईगांव—में सरकारी स्कूल अब भी बुनियादी ढांचे की कमी से जूझ रहे हैं। कई स्कूलों में पर्याप्त कक्षाएं, आधुनिक शिक्षण सामग्री और प्रशिक्षित शिक्षक नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए लंबी दूरी तय करनी पड़ती है, जिससे कई छात्र बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।

स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति भी असमान है। गुवाहाटी में चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार हुआ है, लेकिन हाफलोंग, चिरांग, हैलाकांडी और अन्य दूरदराज जिलों में डॉक्टरों, विशेषज्ञों और उपकरणों की कमी बनी हुई है। बाढ़ के दौरान कई क्षेत्र पूरी तरह कट जाते हैं, जिससे स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच और भी मुश्किल हो जाती है।

इस दृष्टि का लक्ष्य जिला अस्पतालों को मजबूत करना, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को उन्नत बनाना, दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना और स्कूलों के ढांचे में सुधार करना है। उद्देश्य साफ है—शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं किसी व्यक्ति के स्थान पर निर्भर नहीं होनी चाहिए।

2. सहभागी शासन और प्रशासनिक सुधार

सरकारी कर्मचारियों—शिक्षकों से लेकर फील्ड अधिकारियों तक—को अक्सर शीर्ष स्तर के निर्णयों के कारण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इससे न केवल कामकाज प्रभावित होता है, बल्कि कर्मचारियों का मनोबल भी गिरता है।

एक समावेशी शासन मॉडल का उद्देश्य कर्मचारियों को निर्णय प्रक्रिया में शामिल करना, प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाना और सेवाओं की समयबद्ध डिलीवरी सुनिश्चित करना है। गांव पंचायतों और नगर निकायों को सशक्त बनाकर शासन को अधिक जवाबदेह और प्रभावी बनाया जा सकता है।

3. ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाना

असम की असली ताकत उसकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में है, जिसमें कृषि, मत्स्य पालन, हथकरघा और चाय उद्योग शामिल हैं। नलबाड़ी, सोनितपुर और अन्य जिलों के किसान सिंचाई, भंडारण और बाजार की कमी से जूझ रहे हैं। बाढ़ और कटाव उनकी समस्याओं को और बढ़ा देते हैं। इस दृष्टि में किसान सहकारी समितियों को मजबूत करना, सिंचाई सुविधाओं में सुधार, कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना और प्रमुख फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन सुनिश्चित करना शामिल है। सुआलकुची के हथकरघा उद्योग और राज्य के अन्य ग्रामीण कारीगरों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है।

चाय बागान क्षेत्रों में मजदूरों के लिए बेहतर मजदूरी, स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास सुनिश्चित करना इस दृष्टि का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

4. कानून-व्यवस्था में सुधार

असम में शांति और स्थिरता में सुधार जरूर हुआ है, लेकिन कानून-व्यवस्था को लेकर लोगों के मन में कई सवाल अब भी हैं। कई मामलों में निष्पक्षता और जवाबदेही को लेकर चिंता जताई गई है।

एक पारदर्शी और जवाबदेह कानून-व्यवस्था प्रणाली का निर्माण जरूरी है, जिसमें सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार हो और संस्थाओं पर लोगों का भरोसा बढ़े। नशे की समस्या, खासकर सीमावर्ती जिलों में, एक गंभीर चुनौती है, जिस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

5. युवाओं का सशक्तिकरण

कछार, दरांग, गोलाघाट और अन्य जिलों के युवा सिर्फ वादे नहीं, बल्कि वास्तविक अवसर चाहते हैं। कौशल विकास केंद्रों, स्टार्टअप सहायता और खेल सुविधाओं की कमी उन्हें सीमित कर रही है।

इस दृष्टि का उद्देश्य स्थानीय रोजगार के अवसर पैदा करना, उद्यमिता को बढ़ावा देना और बाजार की जरूरतों के अनुसार कौशल प्रशिक्षण देना है। खेल और सांस्कृतिक मंचों का विस्तार युवाओं को सकारात्मक दिशा देने में मदद करेगा।

टूटे वादे–दावों और हकीकत के बीच बढ़ती दूरी

पिछले कुछ वर्षों में असम में कई योजनाओं और परियोजनाओं की घोषणाएं हुई हैं, लेकिन जमीन पर उनका प्रभाव सीमित दिखाई देता है। सड़क, पुल और शहरी विकास परियोजनाओं को बड़ी उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया है, लेकिन बारपेटा, करीमगंज और होजाई जैसे जिलों के अंदरूनी इलाकों में सड़कें अब भी खराब हैं और संपर्क व्यवस्था कमजोर बनी हुई है।

रोजगार का मुद्दा सबसे बड़ी चिंता बना हुआ है। भर्ती प्रक्रियाएं धीमी और अनियमित हैं, जिससे युवा लंबे समय तक अनिश्चितता में रहते हैं। संविदा आधारित नौकरियों पर निर्भरता ने असुरक्षा को और बढ़ा दिया है।

राज्य की आर्थिक स्थिति भी चिंता का विषय है। बढ़ते कर्ज के कारण स्वास्थ्य, शिक्षा और ग्रामीण विकास जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश की क्षमता प्रभावित हुई है। खर्च बढ़ा है, लेकिन उसका लाभ समान रूप से सभी तक नहीं पहुंचा।

विकास के पैटर्न को लेकर भी सवाल उठ रहे हैं। बड़े प्रोजेक्ट और ठेके अक्सर कुछ चुनिंदा लोगों तक सीमित दिखाई देते हैं, जबकि छोटे व्यापारी और स्थानीय उद्यमी अवसरों के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

बाढ़ प्रबंधन सबसे बड़ा अधूरा वादा बना हुआ है। नदी प्रबंधन, ड्रेजिंग और वैज्ञानिक तटबंध निर्माण जैसे दीर्घकालिक उपायों पर पर्याप्त काम नहीं हुआ है। हर साल वही जिले एक जैसी तबाही का सामना करते हैं।

चाय बागान मजदूरों और जनजातीय क्षेत्रों में सुधार की गति भी धीमी रही है। इससे विकास के दावों और जमीनी हकीकत के बीच अंतर और स्पष्ट हो गया है।

अब असम के लोग सिर्फ वादे नहीं सुन रहे—वे परिणाम देख रहे हैं और सवाल पूछ रहे हैं।

> विकास के पैटर्न को लेकर भी सवाल उठ रहे हैं। बड़े प्रोजेक्ट और ठेके अक्सर कुछ चुनिंदा लोगों तक सीमित दिखाई देते हैं, जबकि छोटे व्यापारी और स्थानीय उद्यमी अवसरों के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

जनता के हित हमेशा सर्वोपरि : कॉंग्रेस

जब बड़ी संख्या में लोग खुद को अनसुना महसूस कर रहे हैं, तब एक ऐसे शासन मॉडल की जरूरत महसूस हो रही है जो वास्तव में जनता को केंद्र में रखे। यह मॉडल असम की विविधता का सम्मान करता है और हर समुदाय की आवाज को महत्व देता है।

यह दृष्टिकोण केंद्रीकृत निर्णय प्रणाली से हटकर एक सहभागी व्यवस्था की बात करता है, जहां माजुली के गांवों से लेकर कार्बी आंगलोंग के समुदायों तक सभी की भागीदारी हो।

"जनता पहले" का मतलब है किसानों, चाय मजदूरों, युवाओं, व्यापारियों और महिलाओं के साथ नियमित संवाद। इसका मतलब है फैसले लेने से पहले सुनना और नीतियां लागू करने से पहले परामर्श करना।

यह मॉडल असहमति के सम्मान की भी बात करता है। एक विविध राज्य में अलग-अलग विचार स्वाभाविक हैं और इन्हें दबाने के बजाय लोकतंत्र की ताकत के रूप में देखा जाना चाहिए।

पारदर्शिता और जवाबदेही इस दृष्टि की नींव हैं। सार्वजनिक धन का सही उपयोग और नीतियों की खुली समीक्षा सुनिश्चित करेगी कि विकास का लाभ वास्तव में जरूरतमंदों तक पहुंचे।

सबसे महत्वपूर्ण, यह दृष्टि सरकार और जनता के बीच विश्वास को फिर से मजबूत करने का प्रयास है। शासन को दूर और थोपे गए निर्णयों जैसा नहीं, बल्कि सुलभ, संवेदनशील और जवाबदेह होना चाहिए।

असम के किसान, जो हर साल बाढ़ के बाद अपने खेत फिर से तैयार करते हैं; युवा, जो अवसर की प्रतीक्षा में हैं; चाय मजदूर, जो सम्मानजनक जीवन चाहते हैं; और छोटे व्यापारी, जो रोज संघर्ष कर रहे हैं इन सभी के लिए यह सिर्फ एक राजनीतिक विकल्प नहीं, बल्कि उनके भविष्य का सवाल है।

एक ऐसा भविष्य, जहां असम का विकास समावेशी हो, शासन निष्पक्ष हो और हर निर्णय के केंद्र में जनता हो।

अब असम को चाहिए एक नई सरकार, जो विश्वास, सम्मान और उम्मीद के साथ मिलकर आगे बढ़े।

> असम के किसान, जो हर साल बाढ़ के बाद अपने खेत फिर से तैयार करते हैं; युवा, जो अवसर की प्रतीक्षा में हैं; चाय मजदूर, जो सम्मानजनक जीवन चाहते हैं; और छोटे व्यापारी, जो रोज संघर्ष कर रहे हैं इन सभी के लिए यह सिर्फ एक राजनीतिक विकल्प नहीं, बल्कि उनके भविष्य का सवाल है।

बेरोज़गारी से जूझ रहे असम के युवा

पलायन को मजबूर

असम की आर्थिक स्थिति आज एक गंभीर और चिंताजनक तस्वीर पेश करती है। बढ़ती बेरोजगारी, सीमित होते अवसर और एक ऐसी युवा पीढ़ी, जो अपने ही राज्य में भविष्य न देखकर बाहर जाने को मजबूर हो रही है—यह आज का सच्चा परिदृश्य है। आंकड़ों के पीछे छिपी हर कहानी एक ऐसे युवा की है, जिसके सपने या तो टल रहे हैं, या टूट रहे हैं, या फिर परिस्थितियों के दबाव में दिशा बदलने को मजबूर हो रहे हैं।

असम में बेरोजगारी अब सिर्फ आर्थिक चुनौती नहीं रह गई है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक संकट का रूप ले चुकी है। हाल के आंकड़ों के अनुसार राज्य की बेरोजगारी दर 3.9% तक पहुंच गई है, जो राष्ट्रीय औसत 3.2% से अधिक है। यह अंतर भले छोटा लगे, लेकिन यह राज्य की अर्थव्यवस्था में गहरे ढांचागत संकट की ओर संकेत करता है, खासकर रोजगार सृजन के क्षेत्र में। लेकिन सबसे बड़ी चिंता शिक्षित बेरोजगारी को लेकर है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक असम में 21 लाख से अधिक शिक्षित युवा रोजगार की तलाश में पंजीकृत हैं। इसका मतलब यह है कि शिक्षा और रोजगार के बीच का अंतर लगातार बढ़ता जा रहा है। युवा डिग्रियां हासिल कर रहे हैं, लेकिन उनके अनुरूप नौकरियां उपलब्ध नहीं हैं।

यह समस्या विशेष रूप से युवाओं और महिलाओं में अधिक दिखाई देती है। शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी दर और अधिक है, जहां पढ़े-लिखे युवाओं की संख्या ज्यादा है लेकिन अवसर सीमित हैं। कॉलेज और विश्वविद्यालयों में दाखिला लेने वाले छात्रों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन रोजगार के अवसर उसी अनुपात में नहीं बढ़ रहे। यह एक विरोधाभास है, जो युवाओं में निराशा और असंतोष को जन्म दे रहा है।

इस स्थिति के पीछे एक प्रमुख कारण औद्योगिक विकास की कमी है। असम की अर्थव्यवस्था अब भी मुख्य रूप से कृषि और पारंपरिक क्षेत्रों जैसे चाय उद्योग पर निर्भर है। ये क्षेत्र राज्य के लिए महत्वपूर्ण हैं, लेकिन इनमें आधुनिक और बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन की क्षमता सीमित है। हाल के वर्षों में फैक्ट्री रोजगार में लगभग 10% की गिरावट दर्ज की गई है, जो औद्योगिक विस्तार की धीमी गति को दर्शाती है।

Photo: GettyImages

विशेषज्ञों का कहना है कि असम में मजबूत औद्योगिक आधार की कमी के कारण रोजगार के अवसर सीमित हैं। यही वजह है कि युवा या तो सरकारी नौकरियों पर निर्भर रहते हैं या फिर राज्य से बाहर जाने को मजबूर हो जाते हैं। सरकारी नौकरियों की सीमित संख्या और भर्ती प्रक्रियाओं में देरी स्थिति को और कठिन बना देती है।

कौशल विकास कार्यक्रम, जो इस अंतर को कम करने के लिए शुरू किए गए थे, भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाए हैं। कई प्रशिक्षण कार्यक्रम बाजार की जरूरतों के अनुरूप नहीं हैं, जिससे युवाओं को सर्टिफिकेट तो मिल जाते हैं, लेकिन रोजगार के लिए जरूरी व्यावहारिक कौशल नहीं मिल पाता। इससे एक ऐसी स्थिति बनती है, जहां युवा पढ़े-लिखे होने के बावजूद बेरोजगार रहते हैं।

यह स्थिति केवल आर्थिक विफलता नहीं, बल्कि शासन की चुनौती को भी दर्शाती है। जब एक राज्य अपने शिक्षित युवाओं को अवसर नहीं दे पाता, तो वह अपनी सबसे बड़ी ताकत मानव संसाधन को खोने लगता है।

आज असम में पलायन एक गंभीर वास्तविकता बन चुका है। यह अब विकल्प नहीं, बल्कि मजबूरी है। हर साल हजारों युवा लड़के और लड़कियां बेंगलुरु, दिल्ली, मुंबई और यहां तक कि खाड़ी देशों की ओर जा रहे हैं। यह पलायन एक धीमी लेकिन गहरी प्रक्रिया है, जो राज्य के भीतर अवसरों की कमी को उजागर करती है।

रिपोर्ट्स के अनुसार असम के हजारों लोग दूसरे राज्यों में बागानों, निर्माण कार्य और कम वेतन वाले क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, जहां उन्हें अक्सर कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

इस पलायन के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी गहरे हैं। परिवार बिखर रहे हैं, गांवों में काम करने वाली आबादी कम हो रही है और स्थानीय अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ रही है। बराक घाटी जैसे क्षेत्रों में उद्योगों की कमी और पुराने उद्योगों के बंद होने से यह समस्या और गंभीर हो गई है। इसे कई लोग "ब्रेन ड्रेन" के रूप में देख रहे हैं। सबसे चिंताजनक बात यह है कि अब पलायन केवल असंगठित या कम कुशल श्रमिकों तक सीमित नहीं है। इंजीनियर, स्नातक और अन्य पेशेवर भी बेहतर अवसरों की तलाश में राज्य छोड़ रहे हैं। इससे असम को नवाचार, उद्यमिता और दीर्घकालिक विकास के लिए जरूरी प्रतिभा का नुकसान हो रहा है।

हालांकि कई परिवारों के लिए बाहर काम करने वाले सदस्यों से आने वाली आय आर्थिक राहत देती है, लेकिन इसकी एक सामाजिक और भावनात्मक कीमत भी होती है। माता-पिता अपने बच्चों से दूर हो जाते हैं, समाज में जुड़ाव कम होता है और सामुदायिक ढांचा कमजोर पड़ता है।

इस पूरी स्थिति के बीच एक बड़ा सवाल उभरता है असम के युवाओं को अपने ही राज्य में अवसर क्यों नहीं मिल सकते? क्यों उन्हें दूसरे राज्यों और देशों में जाकर अपना भविष्य बनाना पड़ता है, जबकि उनके अपने राज्य में संभावनाएं मौजूद हैं?

कांग्रेस का रोजगार प्लान
पाँच लाख नौकरियों का वादा

Photo: GettyImages

इस गहराते संकट को देखते हुए कांग्रेस ने असम के लिए एक व्यापक रोजगार योजना पेश की है, जिसका उद्देश्य राज्य की अर्थव्यवस्था को मजबूत करना और युवाओं को उनके अपने राज्य में अवसर प्रदान करना है।

इस योजना का सबसे प्रमुख वादा 5 लाख नौकरियों का सृजन है। लेकिन इस लक्ष्य में केवल संख्या पर नहीं, बल्कि गुणवत्ता, स्थायित्व और स्थानीय जरूरतों के अनुरूप रोजगार पर भी ध्यान दिया गया है।

कांग्रेस की रणनीति में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग (एमएसएमई) को बढ़ावा देना एक अहम पहलू है। ये उद्योग किसी भी अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। आसान ऋण सुविधा, बेहतर बुनियादी ढांचा और बाजार से जुड़ाव के जरिए स्थानीय उद्यमियों को मजबूत करने का लक्ष्य रखा गया है।

इसके अलावा कृषि आधारित उद्योगों पर विशेष जोर दिया गया है। असम के पास चाय, बांस, हथकरघा, मत्स्य पालन और कृषि जैसे क्षेत्रों में अपार संभावनाएं हैं। योजना का उद्देश्य इन संसाधनों का स्थानीय स्तर पर उपयोग कर मूल्य संवर्धन करना है, ताकि राज्य में ही उद्योग स्थापित हों और रोजगार के अवसर बढ़ें।

चाय उद्योग, जो पहले से लाखों लोगों को रोजगार देता है, उसे आधुनिक बनाने और विविधता लाने की बात भी इस योजना में शामिल है, ताकि इसमें नए अवसर पैदा हो सकें।

कौशल विकास इस योजना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कांग्रेस का प्रस्ताव है कि सामान्य प्रशिक्षण के बजाय क्षेत्र विशेष की जरूरतों के अनुसार कौशल केंद्र बनाए जाएं। इससे युवाओं को वही प्रशिक्षण मिलेगा, जिसकी बाजार में मांग है।

इसके साथ ही पूर्वोत्तर क्षेत्र में स्टार्टअप संस्कृति को बढ़ावा देने की योजना भी शामिल है। युवाओं को वित्तीय सहायता, मार्गदर्शन और इन्क्यूबेशन सेंटर उपलब्ध कराकर उन्हें उद्यमिता की ओर प्रोत्साहित किया जाएगा। इसका उद्देश्य युवाओं को नौकरी खोजने वाला नहीं, बल्कि नौकरी देने वाला बनाना है।

इस योजना में समावेशी विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। महिलाओं, जनजातीय समुदायों और समाज के कमजोर वर्गों को भी बराबर अवसर देने की बात कही गई है, ताकि विकास का लाभ सभी तक पहुंचे।

अब और नहीं होगी चाय
बागान मज़दूरों की अनदेखी

असम की पहचान और अर्थव्यवस्था में चाय उद्योग की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। राज्य देश की कुल चाय उत्पादन का आधे से ज्यादा हिस्सा देता है और लगभग 10 लाख मजदूर इस उद्योग पर निर्भर हैं। इसके बावजूद, इन मजदूरों की स्थिति आज भी संतोषजनक नहीं है।

चाय बागान मजदूरों का जीवन आज भी कई कठिनाइयों से भरा हुआ है। कम मजदूरी, गरीबी, खराब आवास और बुनियादी सुविधाओं की कमी उनके रोजमर्रा के जीवन का हिस्सा है।

मजदूरी का मुद्दा लंबे समय से विवाद का विषय रहा है। मजदूरों का कहना है कि उन्हें मिलने वाला वेतन उनकी न्यूनतम जरूरतों को भी पूरा नहीं करता। महंगाई बढ़ने के साथ उनकी समस्याएं और बढ़ गई हैं।

इसके अलावा स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, शिक्षा की सीमित पहुंच और सामाजिक उन्नति के अवसरों की कमी भी बड़ी चुनौतियां हैं। कई रिपोर्ट्स में यह सामने आया है कि चाय बागान क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाएं अपर्याप्त हैं, स्वच्छता का स्तर कम है और शिक्षा तक पहुंच सीमित है।

महिलाओं की स्थिति और भी चिंताजनक है। साक्षरता दर कम होने के कारण वे अक्सर बेहतर अवसरों से वंचित रह जाती हैं, जिससे गरीबी का चक्र जारी रहता है। हालांकि सरकार द्वारा कई योजनाएं चलाई गई हैं, लेकिन उनका पूरा लाभ मजदूरों तक नहीं पहुंच पाया है। योजनाओं के क्रियान्वयन में खामियां बनी हुई हैं।

कांग्रेस ने चाय बागान मजदूरों के लिए एक व्यापक योजना प्रस्तावित की है, जिसमें मजदूरी में सुधार, कल्याण बोर्ड का गठन, बेहतर आवास, स्वास्थ्य सेवाएं और शिक्षा सुविधाएं शामिल हैं।

Photo: GettyImages

कांग्रेस का मानना है कि जिन लोगों ने असम को वैश्विक पहचान दिलाई, उन्हें सम्मानजनक जीवन और बेहतर अवसर मिलना चाहिए।

जमीन, सत्ता और जवाबदेही

"देश से बड़ा कोई नहीं"

असम में जमीन का मुद्दा पहले से ही संवेदनशील रहा है। खासकर जनजातीय समुदायों, किसानों और लंबे समय से बसे लोगों के लिए जमीन उनके अस्तित्व का आधार है। ऐसे में बड़े पैमाने पर जमीन अधिग्रहण के आरोप गंभीर चिंता पैदा करते हैं।

असम में जमीन केवल एक संपत्ति नहीं, बल्कि पहचान, आजीविका और विरासत का प्रतीक है। ऐसे में जमीन से जुड़ा कोई भी मुद्दा सीधे लोगों की भावनाओं और भविष्य से जुड़ जाता है।

हाल ही में राज्यभर में हुए विरोध प्रदर्शनों ने जमीन से जुड़े एक बड़े मुद्दे को उजागर किया है। डिब्रूगढ़, जोरहाट, गोलपाड़ा, धुबरी, सोनितपुर और कोकराझार समेत कई जिलों में लोगों ने प्रदर्शन किए और बड़े पैमाने पर जमीन अधिग्रहण के आरोपों पर चिंता जताई।

करीब 12,000 बीघा जमीन से जुड़े इन आरोपों ने शासन की पारदर्शिता और जवाबदेही पर सवाल खड़े कर दिए हैं।

लोगों के बीच यह धारणा बन रही है कि कहीं सत्ता का इस्तेमाल निजी लाभ के लिए तो नहीं किया जा रहा। "देश से बड़ा कोई नहीं" का नारा इसी भावना को दर्शाता है और लोगों के गुस्से और चिंता को सामने लाता है।

असम में जमीन का मुद्दा पहले से ही संवेदनशील रहा है। खासकर जनजातीय समुदायों, किसानों और लंबे समय से बसे लोगों के लिए जमीन उनके अस्तित्व का आधार है। ऐसे में बड़े पैमाने पर जमीन अधिग्रहण के आरोप गंभीर चिंता पैदा करते हैं। इससे यह संदेश जाता है कि जहां आम लोग जमीन के लिए संघर्ष कर रहे हैं, वहीं प्रभावशाली लोग बड़े भूखंड हासिल कर रहे हैं। इससे असमानता की भावना और बढ़ती है।

युवाओं, किसानों और जनजातीय समुदायों में इस मुद्दे को लेकर असंतोष बढ़ रहा है। यह सिर्फ एक प्रशासनिक या कानूनी मुद्दा नहीं, बल्कि भरोसे का सवाल बन गया है।

कांग्रेस ने इस मामले में कई अहम सवाल उठाए हैं क्या जमीन अधिग्रहण सही प्रक्रिया के तहत हुआ? क्या सभी कानूनी प्रावधानों का पालन किया गया? क्या इसमें हितों का टकराव है?

ये सवाल किसी एक दल से जुड़े नहीं हैं, बल्कि लोकतंत्र की बुनियादी व्यवस्था से जुड़े हैं। एक मजबूत लोकतंत्र में सत्ता में बैठे लोगों की जवाबदेही तय होना जरूरी है।

कांग्रेस ने इस मामले की निष्पक्ष और समयबद्ध जांच की मांग की है, ताकि सच्चाई सामने आ सके और जनता का विश्वास बहाल हो।

इसके साथ ही जमीन रिकॉर्ड को मजबूत करने, डिजिटल सिस्टम लागू करने और पारदर्शिता बढ़ाने की जरूरत पर भी जोर दिया गया है, ताकि भविष्य में इस तरह के विवादों को रोका जा सके।

चुनाव के समय यह मुद्दा और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यह केवल वादों का नहीं, बल्कि जवाबदेही का सवाल है।

आज असम में जमीन का यह मुद्दा लोकतंत्र की परीक्षा बन चुका है। लोग यह देखना चाहते हैं कि क्या व्यवस्था पारदर्शी और न्यायपूर्ण है।

लोगों की मांग साफ है कि सच्चाई सामने आए, न्याय हो और सभी के साथ समान व्यवहार किया जाए। और काँग्रेस मानती है कि देश से बड़ा कोई नहीं।

आज असम में यह आवाज पहले से कहीं ज्यादा मजबूत और स्पष्ट सुनाई दे रही है।

‘जमीन बचाओ, अस्मिता बचाओ’
कांग्रेस का अभियान

Photo: GettyImages

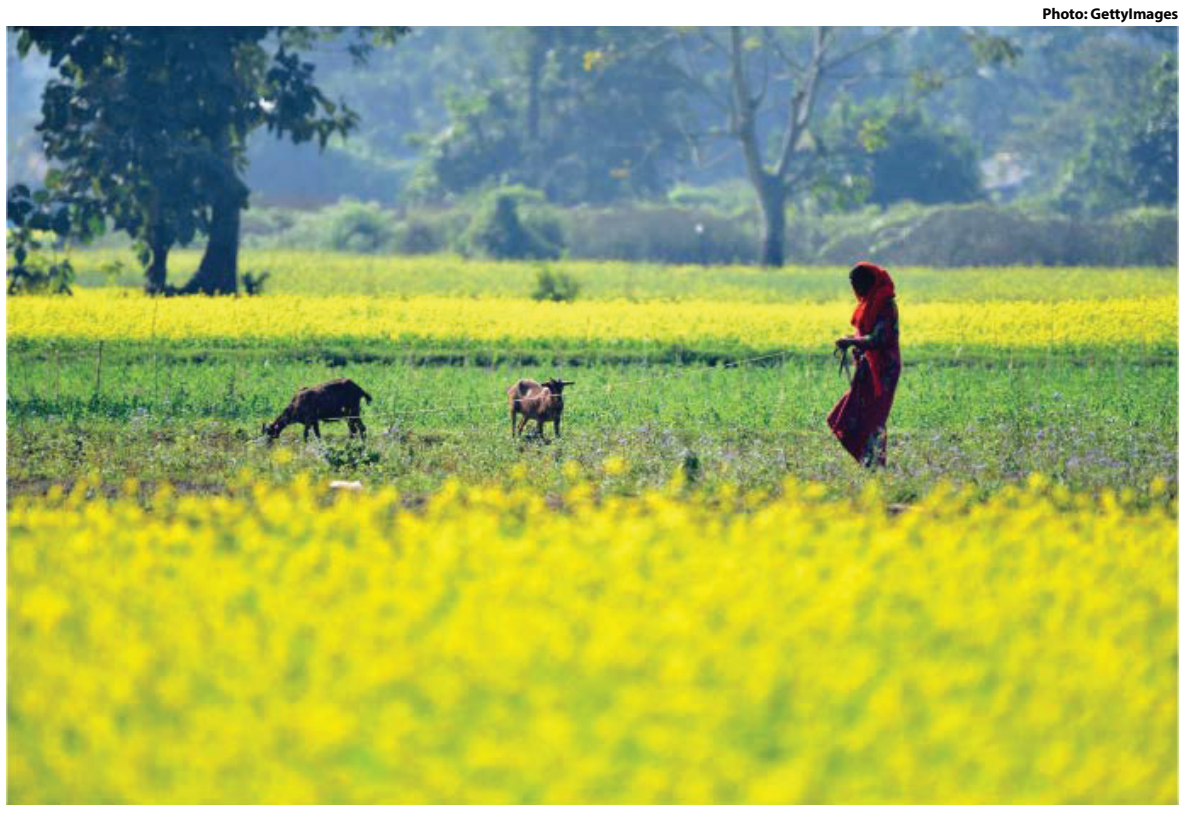

असम के मूल निवासियों के लिए जमीन सिर्फ संपत्ति नहीं है, बल्कि उनकी पहचान, संस्कृति और इतिहास की नींव है। अहोम, बोडो, मिशिंग और कारबी जैसे समुदायों के लिए जमीन उनके अस्तित्व का हिस्सा है। कांग्रेस नेताओं का कहना है कि मौजूदा सरकार की नीतियां इस संतुलन को बिगाड़ रही हैं और समुदायों के हितों की जगह कॉरपोरेट हितों को प्राथमिकता दी जा रही है।

असम में इस समय सबसे बड़ी लड़ाई “जमीन, जाति और अस्मिता” की है। यह अब सिर्फ राजनीतिक मुद्दा नहीं रह गया है, बल्कि लोगों के अस्तित्व, पहचान और भविष्य से जुड़ा सवाल बन चुका है। कांग्रेस ने अपने चुनाव अभियान के केंद्र में इसी मुद्दे को रखा है और “जमीन बचाओ, अस्मिता बचाओ” का नारा दिया है। यह नारा ब्रह्मपुत्र घाटी, बराक घाटी और पहाड़ी इलाकों में तेजी से लोगों के बीच असर डाल रहा है, जहां लोग अपनी जमीन और पहचान को लेकर बढ़ती चिंता में हैं।

पिछले कुछ वर्षों में मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा के नेतृत्व वाली सरकार के दौरान जमीन से जुड़े विवाद और चिंताएं बढ़ी हैं। कई रिपोर्टों, विरोध प्रदर्शनों और जमीनी स्तर पर चल रहे अभियानों में बड़े पैमाने पर जमीन के हस्तांतरण, अतिक्रमण और नीतिगत फैसलों पर सवाल उठाए गए हैं। लोगों का कहना है कि इन फैसलों से स्थानीय और मूल निवासियों के अधिकार कमजोर हो रहे हैं। किसान, आदिवासी समुदाय और छोटे जमीन मालिक अब यह महसूस करने लगे हैं कि उनकी पुश्तैनी जमीन सुरक्षित नहीं रही।

कांग्रेस लगातार जमीन अधिग्रहण में सत्ता के दुरुपयोग का आरोप लगाती रही है। असम प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने हाल ही में आरोप लगाया कि हजारों बीघा जमीन राजनीतिक रूप से जुड़े लोगों के नियंत्रण में है। सरकार ने इन आरोपों को खारिज किया है, लेकिन पारदर्शी जांच की कमी ने लोगों के बीच संदेह और बढ़ा दिया है।

असम के मूल निवासियों के लिए जमीन सिर्फ संपत्ति नहीं है, बल्कि उनकी पहचान, संस्कृति और इतिहास की नींव है। अहोम, बोडो, मिशिंग और कारबी जैसे समुदायों के लिए जमीन उनके अस्तित्व का हिस्सा है। कांग्रेस नेताओं का कहना है कि मौजूदा सरकार की नीतियां इस संतुलन को बिगाड़ रही हैं और समुदायों के हितों की जगह कॉरपोरेट हितों को प्राथमिकता दी जा रही है।

कांग्रेस ने वादा किया है कि सत्ता में आने पर वह जमीन की सुरक्षा के लिए व्यापक नीति लागू करेगी। इसमें मौजूदा जमीन कानूनों को मजबूत करना, अवैध हस्तांतरण रोकना, पारदर्शी डिजिटलीकरण करना और जहां अन्याय हुआ है वहां जमीन के अधिकार वापस दिलाना शामिल है। साथ ही, आदिवासी और संरक्षित जमीन को गैर-स्थानीय लोगों को हस्तांतरित करने पर सख्त रोक लगाने का भी वादा किया गया है।

कांग्रेस अभियान का एक अहम हिस्सा जमीन से जुड़े विवादों के समाधान के लिए ट्रिब्यूनल को फिर से सक्रिय करना और फास्ट-ट्रैक व्यवस्था लागू करना है। असम में हजारों जमीन विवाद के मामले लंबित हैं, जिससे परिवारों को लंबे समय तक कानूनी परेशानी झेलनी पड़ रही है। कांग्रेस का कहना है कि जमीन के मामलों में देरी, न्याय से वंचित करने के बराबर है।

यह अभियान सिर्फ आलोचना तक सीमित नहीं है, बल्कि लोगों का भरोसा जीतने की कोशिश भी है। कांग्रेस खुद को असम की जमीन और पहचान का रक्षक बताकर ऐसी सरकार का वादा कर रही है जो संविधान के प्रावधानों और लोगों की भावनाओं दोनों का सम्मान करे।

असम का इतिहास जमीन और पहचान के आंदोलनों से जुड़ा रहा है। ऐसे में यह मुद्दा एक बार फिर चुनाव का सबसे बड़ा फैसला करने वाला कारक बन सकता है। असम का भविष्य उसी नींव पर टिक सकता है, जिस पर उसके लोग खड़े हैं।

बीटीआर क्षेत्र में आदिवासी गुस्सा
उपेक्षा और विश्वासघात के आरोप

Photo: GettyImages

बोडोलैंड टेरिटोरियल रीजन (BTR), जिसे कभी लंबे संघर्ष के बाद शांति का प्रतीक माना गया था, आज असंतोष और गुस्से का केंद्र बनता जा रहा है। खासकर बोडो और अन्य आदिवासी समुदायों में यह भावना बढ़ रही है कि मौजूदा राज्य सरकार ने उनकी उपेक्षा की है और उनके साथ विश्वासघात किया है।

इस गुस्से की बड़ी वजह आदिवासी इलाकों में जमीन के बड़े पैमाने पर हस्तांतरण के आरोप हैं। विपक्षी दलों और कई रिपोर्टों के मुताबिक, बीटीआर क्षेत्र में 13,000 से 30,000 एकड़ जमीन औद्योगिक और कॉरपोरेट प्रोजेक्ट्स के लिए चिन्हित या हस्तांतरित की गई है। विकास जरूरी है, लेकिन स्थानीय लोगों से बिना सलाह किए ऐसे फैसले लेने से लोगों में विस्थापन और हाशिए पर जाने का डर पैदा हुआ है।

आदिवासी परिवारों के लिए जमीन सिर्फ आजीविका नहीं, बल्कि उनकी पहचान और अस्तित्व से जुड़ी है। जमीन खोना उनके लिए आर्थिक ही नहीं, सांस्कृतिक संकट भी है। संविधान की छठी अनुसूची ऐसे इलाकों में आदिवासी अधिकारों और स्वायत्तता की रक्षा के लिए बनाई गई थी, लेकिन समुदाय के कई नेताओं का कहना है कि व्यवहार में इन प्रावधानों को कमजोर किया जा रहा है।

कांग्रेस ने इस मुद्दे को जोर-शोर से उठाया है और कोकराझार, चिरांग, बक्सा और उदलगुड़ी जिलों में विरोध प्रदर्शन और जनसंपर्क अभियान चलाए हैं। पार्टी ने भाजपा सरकार पर आरोप लगाया है कि वह आदिवासी हितों की जगह कॉरपोरेट हितों को प्राथमिकता दे रही है। यह आरोप स्थानीय लोगों के बीच गूंज रहा है, जो खुद को फैसलों से बाहर महसूस कर रहे हैं।

बीटीआर में एक और बड़ी समस्या बेरोजगारी और टिकाऊ विकास की कमी है। आर्थिक विकास के वादों के बावजूद, क्षेत्र के युवाओं को रोजगार के सीमित अवसर मिल रहे हैं। इससे खासकर पढ़े-लिखे युवाओं में निराशा बढ़ रही है, जिन्हें लगता है कि उनकी उम्मीदों को नजरअंदाज किया जा रहा है।

बीटीआर में एक और बड़ी समस्या बेरोजगारी और टिकाऊ विकास की कमी है। आर्थिक विकास के वादों के बावजूद, क्षेत्र के युवाओं को रोजगार के सीमित अवसर मिल रहे हैं। इससे खासकर पढ़े-लिखे युवाओं में निराशा बढ़ रही है, जिन्हें लगता है कि उनकी उम्मीदों को नजरअंदाज किया जा रहा है।

कांग्रेस ने आदिवासी विकास के लिए नई रणनीति का वादा किया है, जिसमें ऊपर से थोपे गए फैसलों के बजाय समुदाय आधारित विकास पर जोर दिया जाएगा। इसके तहत स्वायत्त परिषदों की शक्तियों को मजबूत करना, जमीन उपयोग में बदलाव से पहले स्थानीय सहमति लेना और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा स्थानीय उद्योगों में निवेश बढ़ाना शामिल है।

पार्टी ने पिछले 10 वर्षों में आदिवासी इलाकों में हुए सभी जमीन सौदों की स्वतंत्र जांच कराने का भी वादा किया है, ताकि पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित की जा सके।

बीटीआर का बढ़ता गुस्सा सिर्फ जमीन का मुद्दा नहीं है, बल्कि सम्मान, भागीदारी और अधिकारों का सवाल है। जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आ रहे हैं, इन इलाकों से उठ रही आवाजें और तेज हो रही हैं और सत्ता में बैठे लोगों से जवाब मांग रही हैं।

मूल निवासी समुदाय और सांस्कृतिक अस्तित्व का सवाल

असम की सांस्कृतिक विविधता उसकी सबसे बड़ी ताकत है। बोडो, कारबी, मिशिंग, राभा, तिवा और चाय जनजाति जैसे समुदाय इस राज्य की पहचान को समृद्ध बनाते हैं। लेकिन अब इन समुदायों में अपनी भाषा, संस्कृति और पहचान को लेकर चिंता बढ़ रही है।

तेजी से हो रहा शहरीकरण, बढ़ता प्रवासन और कुछ नीतिगत फैसले इस चिंता की वजह बने हैं। कई स्थानीय भाषाएं धीरे-धीरे खत्म होने की कगार पर हैं, क्योंकि नई पीढ़ी रोजगार के लिए दूसरी भाषाओं की ओर जा रही है। पारंपरिक त्योहार, रीति-रिवाज और ज्ञान भी खतरे में हैं। इस संदर्भ में जमीन की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। संस्कृति अक्सर खास भौगोलिक क्षेत्रों से जुड़ी होती है नदियां, जंगल और पुश्तैनी जमीन। जब ये खत्म होते हैं या बदलते हैं, तो इसका सीधा असर संस्कृति पर पड़ता है।

कांग्रेस ने अपने अभियान में इन मुद्दों को प्रमुखता से उठाया है और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए व्यापक योजना का वादा किया है। इसमें शिक्षा में स्थानीय भाषाओं को बढ़ावा देना, सांस्कृतिक संस्थानों को समर्थन देना और सभी समुदायों को शासन में प्रतिनिधित्व देना शामिल है।

पार्टी ने स्वायत्त परिषदों को मजबूत करने की भी बात कही है, ताकि वे प्रशासनिक और वित्तीय रूप से सक्षम बन सकें और स्थानीय समस्याओं का समाधान खुद कर सकें।

कांग्रेस ने पारंपरिक जमीन अधिकारों की सुरक्षा को भी जरूरी बताया है। पार्टी का कहना है कि जमीन सुरक्षित किए बिना संस्कृति को बचाने की कोशिश अधूरी रहेगी। इसलिए नीतियों में जमीन, संस्कृति और विकास को साथ लेकर चलना होगा।

कांग्रेस खुद को एक समावेशी और विविधता का सम्मान करने वाली पार्टी के रूप में पेश कर रही है। वहीं, उसने मौजूदा सरकार पर आरोप लगाया है कि उसकी नीतियां छोटे समुदायों को हाशिए पर डाल रही हैं।

असम की सांस्कृतिक विरासत सिर्फ क्षेत्रीय नहीं, बल्कि राष्ट्रीय महत्व की है। इन परंपराओं में सदियों का इतिहास और ज्ञान छिपा है। इन्हें बचाना असम की पहचान को बचाने के लिए जरूरी है।

चुनाव के इस समय में यह सवाल अहम है कि लोग किस तरह का असम आने वाली पीढ़ियों को देना चाहते हैं।

कांग्रेस खुद को एक समावेशी और विविधता का सम्मान करने वाली पार्टी के रूप में पेश कर रही है। वहीं, उसने मौजूदा सरकार पर आरोप लगाया है कि उसकी नीतियां छोटे समुदायों को हाशिए पर डाल रही हैं।

CAA–NRC
खामियां और विरोधाभास

Photo: GettyImages

असम की राजनीति और समाज को जितना झकझोरने वाला मुद्दा CAA और NRC रहा है, उतना शायद ही कोई और मुद्दा रहा हो। इन दोनों नीतियों ने न सिर्फ बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन को जन्म दिया, बल्कि सरकार और जनता के बीच भरोसे की खाई भी बढ़ा दी।

नागरिकता और प्रवासन के मामले में असम का इतिहास अलग रहा है। 1985 का असम समझौता अवैध प्रवासियों की पहचान और समाधान के लिए एक स्पष्ट ढांचा देता है। लेकिन कई लोगों का मानना है कि CAA इस समझौते के खिलाफ जाता है, क्योंकि यह धर्म के आधार पर नागरिकता देने की बात करता है, जिससे जनसंख्या संतुलन बदलने का खतरा है।

CAA के खिलाफ असम में देश के सबसे तीव्र विरोध प्रदर्शन हुए। छात्र, कलाकार, सामाजिक संगठन और आम लोग सड़कों पर उतर आए। लोगों को डर था कि यह कानून असमिया पहचान को कमजोर कर देगा। सरकार की ओर से की गई गिरफ्तारियां और पाबंदियों ने लोगों और सरकार के बीच दूरी और बढ़ा दी।

दूसरी ओर, NRC प्रक्रिया, जिससे स्पष्टता आने की उम्मीद थी, उसने उल्टा कई लोगों को अनिश्चितता में डाल दिया। अंतिम सूची से 19 लाख से अधिक लोग बाहर रह गए, जिनमें कई वास्तविक नागरिक भी शामिल हैं। इससे उनके भविष्य को लेकर गंभीर सवाल खड़े हो गए हैं। साथ ही, प्रक्रिया में खामियों और असंगतियों की शिकायतें भी सामने आईं।

कांग्रेस ने इन मुद्दों पर स्पष्ट रुख अपनाया है। पार्टी ने राज्य में CAA लागू करने का विरोध किया है और NRC को निष्पक्ष, पारदर्शी और त्रुटिरहित बनाने की बात कही है।

कांग्रेस का कहना है कि नागरिकता जैसे संवेदनशील मुद्दों को डर और विभाजन के आधार पर नहीं सुलझाया जा सकता। इसके लिए संतुलित दृष्टिकोण जरूरी है, जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा और मानवाधिकार दोनों का ध्यान रखा जाए।

CAA और NRC से पैदा हुआ भरोसे का संकट सिर्फ राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक भी है। इसका असर परिवारों, समुदायों और पूरे राज्य के भविष्य पर पड़ रहा है। कांग्रेस खुद को ऐसे विकल्प के रूप में पेश कर रही है, जो समाज को बांटने के बजाय जोड़ने की बात करती है।

ज़ुबिन गर्ग के लिए न्याय की मांग

असम के प्रसिद्ध गायक और सांस्कृतिक प्रतीक ज़ुबिन गर्ग का 19 सितंबर 2025 को सिंगापुर में हुआ निधन पूरे राज्य के लिए एक बड़ा झटका था। वह सिर्फ एक कलाकार नहीं थे, बल्कि असम के लोगों से गहरे भावनात्मक रूप से जुड़े हुए थे। उनके निधन से कला और संस्कृति की दुनिया में एक बड़ी खाली जगह बन गई है। हालांकि, उनकी मौत के बाद हुई जांच को लेकर राज्य सरकार की भूमिका पर सवाल उठ रहे हैं।

कांग्रेस ने मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा के नेतृत्व वाली सरकार पर जांच को सही तरीके से न संभालने का आरोप लगाया है। पार्टी का कहना है कि इस मामले की जांच के लिए बनाई गई विशेष जांच टीम (SIT) ने मुख्य आरोपियों और अहम पहलुओं पर ध्यान नहीं दिया।

कांग्रेस ने जांच की धीमी रफ्तार और दिशा पर भी सवाल उठाए हैं। पार्टी के अनुसार, मामला अदालत में होने के बावजूद SIT बनने के बाद कोई ठोस प्रगति नजर नहीं आई। इससे लोगों, खासकर ज़ुबिन गर्गके प्रशंसकों में चिंता और संदेह बढ़ा है, जो सच्चाई जानना चाहते हैं।

कांग्रेस ने यह भी आरोप लगाया है कि जांच पर राजनीतिक प्रभाव हो सकता है। पार्टी लगातार निष्पक्ष और जवाबदेह जांच की मांग कर रही है।

कांग्रेस ने मांग की है कि जांच पूरी तरह स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी होनी चाहिए। पार्टी का कहना है कि सिर्फ न्याय होना ही नहीं, बल्कि होता हुआ दिखना भी जरूरी है, ताकि ज़ुबिन गर्ग के परिवार, उनके प्रशंसकों और असम के लोगों को संतोष मिल सके।

ज़ुबिन गर्ग की मौत सिर्फ एक व्यक्तिगत घटना नहीं, बल्कि पूरे असम के लिए सामूहिक दुख का विषय है। लेकिन यह मामला अब संस्थाओं की विश्वसनीयता की परीक्षा भी बन गया है। कांग्रेस का कहना है कि केवल पारदर्शी और समयबद्ध जांच ही लोगों का भरोसा वापस ला सकती है।

असम में ज़ुबिन गर्ग जैसे सांस्कृतिक व्यक्तित्व लोगों के दिलों में खास जगह रखते हैं। ऐसे में सच्चाई की मांग सिर्फ राजनीतिक नहीं, बल्कि भावनात्मक भी है। कांग्रेस ने कहा है कि वह इस मामले में जवाबदेही सुनिश्चित कराने के लिए अपनी आवाज उठाती रहेगी, ताकि राज्य के इस प्रिय कलाकार की विरासत को न्याय और सम्मान मिल सके।

Photo: GettyImages

असम में प्रशासनिक कर्मचारियों और अधिकारियों के

मनोबल में गिरावट

असम में शासन की प्रभावशीलता काफी हद तक प्रशासनिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। लेकिन हाल के वर्षों में यह चिंता बढ़ी है कि सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों का मनोबल गिर रहा है।

कर्मचारी संगठनों, सेवानिवृत्त अधिकारियों और नीति विशेषज्ञों ने आरोप लगाया है कि मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा के नेतृत्व में निर्णय लेने की प्रक्रिया में अत्यधिक केंद्रीकरण हो गया है। इससे अधिकारियों की स्वतंत्रता कम हो रही है।

निर्णय लेने में केंद्रीकरण

आलोचकों का कहना है कि ज्यादातर फैसले सीमित स्तर पर लिए जा रहे हैं। जिला स्तर के अधिकारी और विभाग प्रमुख अपनी स्वतंत्रता से काम नहीं कर पा रहे। इससे न केवल फैसलों में देरी होती है, बल्कि जमीनी स्तर पर जवाबदेही भी कमजोर होती है।

कर्मचारियों की शिकायतें

शिक्षा, स्वास्थ्य और लोक निर्माण जैसे विभागों के कर्मचारी समय-समय पर अपनी समस्याएं उठा चुके हैं। शिक्षकों ने भर्ती और तबादलों में देरी की बात कही है, जबकि स्वास्थ्य कर्मियों ने काम के असमान बंटवारे और ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी की शिकायत की है।

अनुभवी अधिकारियों की अनदेखी

एक और समस्या अनुभवी अधिकारियों को नजरअंदाज करने की बताई जा रही है। प्रशासन में अनुभव और निरंतरता जरूरी होती है, लेकिन बार-बार तबादले और ऊपर से आदेश आने की वजह से यह संतुलन बिगड़ रहा है।

> कांग्रेस ने वादा किया है कि वह प्रशासनिक प्रक्रियाओं को मजबूत करेगी, कर्मचारियों से नियमित संवाद करेगी और स्थानीय प्रशासन को ज्यादा अधिकार देगी। पार्टी ने विभागीय समीक्षा परिषद, पारदर्शी तबादला नीति और जिला व ब्लॉक स्तर पर विकेंद्रीकृत योजना बनाने जैसे सुझाव दिए हैं।

इसका असर यह हो रहा है कि सरकार घोषणाएं तो तेजी से करती है, लेकिन जमीनी स्तर पर उनका असर उतना नहीं दिखता।

कांग्रेस का रुख

कांग्रेस ने इस मुद्दे को अपने एजेंडे में प्रमुखता दी है। पार्टी का कहना है कि असम को आदेश आधारित शासन नहीं, बल्कि सहभागिता आधारित शासन की जरूरत है। कांग्रेस ने वादा किया है कि वह प्रशासनिक प्रक्रियाओं को मजबूत करेगी, कर्मचारियों से नियमित संवाद करेगी और स्थानीय प्रशासन को ज्यादा अधिकार देगी। पार्टी ने विभागीय समीक्षा परिषद, पारदर्शी तबादला नीति और जिला व ब्लॉक स्तर पर विकेंद्रीकृत योजना बनाने जैसे सुझाव दिए हैं।

भरोसे का सवाल

यह पूरा मुद्दा सरकार और प्रशासन के बीच भरोसे का है। अगर अधिकारी प्रेरित और सशक्त नहीं होंगे, तो अच्छी नीतियां भी सफल नहीं हो पाएंगी। चुनाव के इस दौर में यह सवाल अहम है कि क्या मौजूदा शासन मॉडल लंबे समय तक प्रभावी रह सकता है या इसमें बदलाव की जरूरत है।

लोकतंत्र पर सवाल

असम में मतदाता सूची संशोधन पर कांग्रेस के गंभीर आरोप

असम विधानसभा चुनाव नजदीक आते ही एक बार फिर चुनाव प्रक्रिया की पारदर्शिता और विश्वसनीयता पर गंभीर सवाल उठने लगे हैं। कांग्रेस ने राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण (Special Intensive Revision - SIR) और इससे जुड़े अपडेट को लेकर लगातार चिंता जताई है। पार्टी का आरोप है कि इस प्रक्रिया में खामियां और पारदर्शिता की कमी चुनाव की निष्पक्षता को प्रभावित कर सकती है।

इस पूरे विवाद का केंद्र संशोधन के बाद जारी की गई ड्राफ्ट मतदाता सूची है। यह प्रक्रिया आमतौर पर सही, समावेशी और भरोसेमंद सूची तैयार करने के लिए की जाती है। लेकिन कांग्रेस का कहना है कि इस बार इसमें कई तरह की गड़बड़ियां सामने आई हैं, जिनकी तुरंत जांच जरूरी है।

Photo: GettyImages

प्रक्रिया पर उठते सवाल

मतदाता सूची का संशोधन एक संवैधानिक प्रक्रिया है, जिसे चुनाव आयोग की निगरानी में किया जाता है। इसका उद्देश्य नए योग्य मतदाताओं को जोड़ना और अयोग्य नाम हटाना होता है। भारत निर्वाचन आयोग को जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत यह अधिकार प्राप्त है। लेकिन कांग्रेस का आरोप है कि असम में यह प्रक्रिया पारदर्शिता और जवाबदेही के मानकों से भटक गई है। पार्टी ने चुनाव आयोग से संपर्क कर इन गड़बड़ियों की पूरी जांच की मांग की है।

'अज्ञात' और अप्रमाणित मतदाताओं का मुद्दा

कांग्रेस ने सबसे गंभीर आरोप यह लगाया है कि मतदाता सूची में "अज्ञात" और बिना सत्यापन के मतदाताओं को शामिल किया गया है। कई शिकायतों और रिपोर्टों में यह सामने आया है कि कुछ लोगों के नाम ऐसे घरों में जोड़ दिए गए, जिनके असली निवासियों को इसकी जानकारी तक नहीं थी।

कुछ मामलों में एक ही पते पर कई लोगों का नाम दर्ज किया गया, जबकि परिवार को इसकी कोई जानकारी नहीं थी। वहीं, कुछ ऐसे पते भी सामने आए हैं जो अस्तित्व में ही नहीं हैं, लेकिन वहां मतदाता दर्ज कर दिए गए हैं। इससे सत्यापन प्रक्रिया पर सवाल खड़े हो रहे हैं।

कांग्रेस का कहना है कि ये सिर्फ छोटी-मोटी गलती नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था की कमजोरी को दिखाता है, जो चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता को प्रभावित कर सकता है।

'अस्थायी मतदाता' और वैधता पर सवाल

एक और बड़ा मुद्दा "अस्थायी मतदाताओं" का है। कांग्रेस का आरोप है कि राज्य के बाहर के लोगों को भी मतदाता सूची में शामिल किया गया है। पार्टी का कहना है कि इससे चुनाव के नतीजों को प्रभावित करने की कोशिश हो सकती है। असम जैसे राज्य में, जहां पहचान, नागरिकता और मतदाता वैधता के मुद्दे पहले से संवेदनशील रहे हैं, इस तरह की गड़बड़ी का सामाजिक और राजनीतिक असर गहरा हो सकता है।

नाम हटाने और अधिकार छिनने का डर

जहां एक तरफ गलत तरीके से नाम जोड़ने के आरोप हैं, वहीं दूसरी तरफ बड़ी संख्या में नाम हटाने की शिकायत भी सामने आई है।

कांग्रेस ने सवाल उठाया है कि नाम हटाने के लिए क्या मापदंड अपनाए गए और क्या प्रभावित लोगों को अपनी बात रखने का मौका दिया गया। पार्टी का कहना है कि ड्राफ्ट सूची में पर्याप्त जानकारी और स्पष्टता नहीं है, जिससे लोग समय रहते सुधार नहीं कर पा रहे।

राष्ट्रीय स्तर पर भी उठे सवाल

यह मामला सिर्फ असम तक सीमित नहीं है। कांग्रेस ने देश के कई राज्यों में मतदाता सूची संशोधन को लेकर इसी तरह की चिंताएं उठाई हैं। पार्टी का कहना है कि कई जगहों पर SIR प्रक्रिया में अनियमितताएं देखी गई हैं।

कांग्रेस का आरोप है कि तकनीकी और सत्यापन प्रक्रिया को सही तरीके से लागू नहीं किया गया, जिससे गलतियां या हेरफेर की संभावना बढ़ गई है। इस तरह,

> असम जैसे राज्य में, जहां पहचान, नागरिकता और मतदाता वैधता के मुद्दे पहले से संवेदनशील रहे हैं, इस तरह की गड़बड़ी का सामाजिक और राजनीतिक असर गहरा हो सकता है।

असम का मुद्दा अब एक बड़े राष्ट्रीय सवाल के रूप में सामने आ रहा है—क्या चुनाव प्रक्रिया पूरी तरह निष्पक्ष और पारदर्शी है?

लोकतांत्रिक संस्थाओं की परीक्षा

असम में SIR को लेकर उठे सवाल ऐसे समय पर सामने आए हैं, जब राज्य चुनाव की तैयारी कर रहा है। ऐसे में मतदाता सूची की विश्वसनीयता जनता के भरोसे को सीधे प्रभावित करेगी।

कांग्रेस का कहना है कि यह सिर्फ राजनीतिक मुद्दा नहीं, बल्कि संवैधानिक अधिकार का सवाल है। हर योग्य नागरिक को वोट देने का अधिकार है और संस्थाओं की जिम्मेदारी है कि इस अधिकार की रक्षा की जाए। पार्टी ने साफ कहा है कि चुनाव की निष्पक्षता से कोई समझौता नहीं होना चाहिए।

कानून-व्यवस्था पर सवाल: क्या असम में चयनात्मक न्याय हो रहा है?

कानून-व्यवस्था को सरकार की सबसे बड़ी जिम्मेदारी माना जाता है। लेकिन असम में यह मुद्दा अब राजनीतिक बहस का केंद्र बन गया है।

कांग्रेस ने आरोप लगाया है कि राज्य में "चयनात्मक न्याय" की स्थिति बन गई है। यानी कानून का इस्तेमाल सभी पर समान रूप से नहीं हो रहा।

कार्रवाई में असमानता के आरोप

सरकार का कहना है कि अपराध पर नियंत्रण और निगरानी में सुधार हुआ है। लेकिन विपक्ष का आरोप है कि कानून का इस्तेमाल कुछ मामलों में तेजी से होता है, जबकि कुछ मामलों में धीमी कार्रवाई होती है।

कांग्रेस का कहना है कि राजनीतिक कार्यकर्ताओं, छात्र नेताओं और विरोध करने वालों के खिलाफ जल्दी कार्रवाई होती है, जबकि सत्ता से जुड़े लोगों के मामलों में ढील दी जाती है।

विरोध प्रदर्शनों पर सख्ती

असम में छात्र आंदोलनों और सामाजिक गतिविधियों की लंबी परंपरा रही है। लेकिन हाल के वर्षों में विरोध प्रदर्शनों पर कड़ी कार्रवाई देखने को मिली है।

इससे यह बहस शुरू हो गई है कि कानून-व्यवस्था बनाए रखने और लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के बीच संतुलन कैसे रखा जाए।

सार्वजनिक सुरक्षा की चुनौती

गुवाहाटी जैसे शहरों में चोरी, साइबर अपराध और महिलाओं के खिलाफ अपराध की घटनाएं सामने आती रहती हैं। यह दिखाता है कि तेजी से बदलते समाज में अपराध का स्वरूप भी बदल रहा है।

सरकार ने तकनीकी सुधार और पुलिसिंग में बदलाव की बात कही है, लेकिन विपक्ष का कहना है कि इसके साथ व्यापक सुधार और जवाबदेही भी जरूरी है।

Photo: GettyImages

कांग्रेस के सुझाव

कांग्रेस ने पुलिस सुधार का प्रस्ताव दिया है, जिसमें पुलिस को राजनीतिक दबाव से मुक्त करना, सामुदायिक पुलिसिंग को बढ़ावा देना और समयबद्ध जांच सुनिश्चित करना शामिल है।

पार्टी ने संवेदनशील मामलों की निगरानी के लिए स्वतंत्र व्यवस्था बनाने की भी बात कही है, ताकि सत्ता के दुरुपयोग को रोका जा सके।

निष्पक्षता की जरूरत

कांग्रेस का कहना है कि कानून मजबूत होने के साथ-साथ निष्पक्ष भी होना चाहिए। अगर लोगों को पक्षपात का एहसास होगा, तो इससे समाज में अविश्वास बढ़ेगा। असम जैसे विविध राज्य में कानून का समान रूप से लागू होना शांति और स्थिरता के लिए बेहद जरूरी है।

नशे का संकट और युवाओं की चुनौती

असम को नई दिशा की जरूरत

असम इस समय नशे की बढ़ती समस्या से जूझ रहा है, खासकर युवाओं के बीच यह एक गंभीर संकट बनता जा रहा है। राज्य की भौगोलिक स्थिति और अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के पास होने के कारण यह तस्करी के नेटवर्क के लिए संवेदनशील क्षेत्र बन गया है।

समस्या की बढ़ती गंभीरता

हाल के वर्षों में पुलिस और एजेंसियों ने बड़ी मात्रा में ड्रग्स जब्त किए हैं। यह एक तरफ सतर्कता को दिखाता है, लेकिन दूसरी तरफ समस्या के बड़े पैमाने की ओर भी इशारा करता है। विशेषज्ञों का कहना है कि सिर्फ जब्ती के आंकड़े इस समस्या की पूरी तस्वीर नहीं दिखाते। इसके पीछे बढ़ती लत, जागरूकता की कमी और पुनर्वास सुविधाओं की कमी जैसी गहरी सामाजिक समस्याएं हैं।

> कांग्रेस ने हर जिले में नशा मुक्ति केंद्र बढ़ाने, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं में मानसिक स्वास्थ्य को शामिल करने और स्कूल-कॉलेजों में जागरूकता अभियान चलाने की बात कही है।

समाज पर असर

युवा संगठनों और सामाजिक समूहों ने बार-बार बताया है कि नशे की लत परिवारों और समाज को प्रभावित कर रही है। कई जिलों में यह शिक्षा, रोजगार और सामाजिक स्थिरता के लिए खतरा बन गया है। बेरोजगारी और नशे के बीच संबंध की भी बात कही जाती है। जब युवाओं के पास अवसर नहीं होते, तो वे गलत रास्तों की ओर बढ़ सकते हैं।

कांग्रेस की रणनीति

कांग्रेस ने इस समस्या को गंभीरता से लेते हुए बहुआयामी रणनीति का प्रस्ताव दिया है। पार्टी का कहना है कि सिर्फ सख्त कार्रवाई से समस्या का समाधान नहीं होगा।

कांग्रेस ने हर जिले में नशा मुक्ति केंद्र बढ़ाने, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं में मानसिक स्वास्थ्य को शामिल करने और स्कूल-कॉलेजों में जागरूकता अभियान चलाने की बात कही है।

इसके साथ ही, खेल और युवाओं के लिए सकारात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने का भी प्रस्ताव है, ताकि उन्हें सही दिशा मिल सके।

क्षेत्रीय सहयोग की जरूरत

नशे की तस्करी एक अंतरराज्यीय और अंतरराष्ट्रीय समस्या है। इसलिए कांग्रेस ने पड़ोसी राज्यों और केंद्रीय एजेंसियों के साथ बेहतर समन्वय की जरूरत बताई है।

खुफिया जानकारी साझा करना और संयुक्त अभियान चलाना इस दिशा में जरूरी कदम बताए गए हैं।

युवाओं का भविष्य दांव पर

नशे की समस्या सिर्फ कानून-व्यवस्था का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह युवाओं के भविष्य से जुड़ा सवाल है। सीमित अवसर, सामाजिक दबाव और तेजी से बदलते माहौल ने इस संकट को और बढ़ा दिया है।

चुनाव के समय यह सवाल अहम है कि क्या सरकार का जवाब पर्याप्त है या फिर इसे और व्यापक और दीर्घकालिक दृष्टिकोण से देखने की जरूरत है।

कांग्रेस ने इस मुद्दे को शासन की प्राथमिकता से जोड़ते हुए कहा है कि अब केवल तात्कालिक कदम नहीं, बल्कि समाज आधारित स्थायी समाधान की जरूरत है।

असम में सत्ता का दुरुपयोग और संवैधानिक संकट

Photo: GettyImages

मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा के नेतृत्व वाली सरकार पर लगातार यह आरोप लगते रहे हैं कि राज्य में सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण हुआ है, अधिकारों का दुरुपयोग बढ़ा है और सामाजिक ध्रुवीकरण गहराता जा रहा है। असम में आज सबसे संवेदनशील राजनीतिक मुद्दों में से एक है सरकार द्वारा चलाया जा रहा अतिक्रमण हटाने का अभियान, जिसमें सरकारी, वन और धार्मिक जमीनों से कथित अतिक्रमणकारियों को हटाया जा रहा है।

सत्तारूढ़ गठबंधन का कहना है कि ये अभियान सार्वजनिक भूमि को वापस लेने, पर्यावरणीय क्षेत्रों की रक्षा करने और सत्रों तथा मंदिरों की पवित्रता बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। लेकिन कांग्रेस ने इन कार्रवाइयों के तरीके और उनके प्रभाव को लेकर गंभीर सवाल उठाए हैं।

कांग्रेस नेताओं के अनुसार, जिन लोगों को हटाया गया है उनमें बड़ी संख्या आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों की है, जो दशकों से इन जमीनों पर रह रहे थे, लेकिन उनके पास औपचारिक दस्तावेज नहीं थे। पार्टी का आरोप है कि इन बेदखली अभियानों का असर असमान रूप से मुसलमानों पर पड़ा है, जिससे यह एक प्रशासनिक प्रक्रिया के बजाय राजनीतिक रूप से संवेदनशील मुद्दा बन गया है।

कांग्रेस का कहना है कि अतिक्रमण एक वास्तविक समस्या है, लेकिन इसे हल करने की प्रक्रिया मानवीय, पारदर्शी और गैर-भेदभावपूर्ण होनी चाहिए। राज्य के कई जिलों से आई रिपोर्टों में यह सामने आया है कि कई परिवारों को रातोंरात बेघर कर दिया गया, जबकि उन्हें पुनर्वास या मुआवजे की सीमित या कोई सुविधा नहीं मिली।

इन कार्रवाइयों से लोगों की आजीविका भी प्रभावित हुई है। कृषि और छोटे व्यवसायों पर निर्भर लोगों की आय के स्रोत खत्म हो गए, जिससे आर्थिक संकट और गहरा गया। कांग्रेस ने इस मुद्दे को केवल कानूनी नहीं बल्कि मानवीय संकट के रूप में पेश किया है।

पार्टी ने वादा किया है कि वह एक संतुलित भूमि नीति लागू करेगी, जिसमें सार्वजनिक भूमि की रक्षा के साथ-साथ कमजोर वर्गों के पुनर्वास और कानूनी सहायता की व्यवस्था होगी। कांग्रेस का मानना है कि शासन का उद्देश्य केवल कानून लागू करना नहीं, बल्कि लोगों की गरिमा और न्याय सुनिश्चित करना होना चाहिए।

> कांग्रेस नेताओं का तर्क है कि सामाजिक सुधार केवल बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां करके नहीं किया जा सकता। उनका कहना है कि बाल विवाह एक सामाजिक-आर्थिक समस्या है, जो गरीबी, शिक्षा की कमी और जागरूकता के अभाव से जुड़ी हुई है। इसलिए इसके समाधान के लिए दीर्घकालिक और व्यापक प्रयासों की जरूरत है। इसके अलावा, गिरफ्तारियों के बाद परिवारों पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर भी चिंता जताई गई है। कई मामलों में महिलाओं और बच्चों को बिना सहारे के छोड़ दिया गया है, जिससे उनकी स्थिति और कठिन हो गई है।

बाल विवाह पर कार्रवाई, सुधार या चयनात्मक कार्रवाई?

असम सरकार का बाल विवाह के खिलाफ अभियान उसकी सबसे प्रमुख पहलों में से एक रहा है। इस अभियान के तहत हजारों गिरफ्तारियां की गई हैं और बाल यौन अपराध संरक्षण अधिनियम (POCSO) जैसे कानूनों के तहत कार्रवाई की गई है। सरकार इसे एक गहरी सामाजिक बुराई को खत्म करने की दिशा में बड़ा कदम बता रही है।

हालांकि कांग्रेस ने इस मुद्दे की गंभीरता को स्वीकार करते हुए सरकार के दृष्टिकोण पर सवाल उठाए हैं। विपक्षी नेताओं का कहना है कि इस अभियान का असर भी कुछ खास समुदायों, विशेषकर मुसलमानों पर अधिक पड़ा है।

कांग्रेस नेताओं का तर्क है कि सामाजिक सुधार केवल बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां करके नहीं किया जा सकता। उनका कहना है कि बाल विवाह एक सामाजिक-आर्थिक समस्या है, जो गरीबी, शिक्षा की कमी और जागरूकता के अभाव से जुड़ी हुई है। इसलिए इसके समाधान के लिए दीर्घकालिक और व्यापक प्रयासों की जरूरत है।

इसके अलावा, गिरफ्तारियों के बाद परिवारों पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर भी चिंता जताई गई है। कई मामलों में महिलाओं और बच्चों को बिना सहारे के छोड़ दिया गया है, जिससे उनकी स्थिति और कठिन हो गई है।

आलोचकों का कहना है कि यदि शिक्षा, आर्थिक सहायता और परामर्श जैसी सहायक व्यवस्थाएं साथ में नहीं दी जातीं, तो ऐसी कार्रवाइयां सामाजिक अस्थिरता को बढ़ा सकती हैं। कांग्रेस ने एक समग्र दृष्टिकोण का प्रस्ताव रखा है, जिसमें कानून का सख्ती से पालन करने के साथ-साथ समुदायों को जोड़ना, शिक्षा को बढ़ावा देना और आर्थिक सशक्तिकरण शामिल हो।

पार्टी का कहना है कि सुधार की प्रक्रिया समावेशी और संवेदनशील होनी चाहिए, न कि किसी विशेष समुदाय को निशाना बनाने वाली।

CAA, NRC और पहचान की राजनीति

अवैध प्रवासन का मुद्दा असम की राजनीति में लंबे समय से बेहद संवेदनशील और भावनात्मक रहा है। असम आंदोलन से लेकर असम समझौते तक, राज्य की राजनीति में स्थानीय पहचान की रक्षा एक प्रमुख विषय रहा है।

कांग्रेस का कहना है कि स्वदेशी समुदायों के लिए संवैधानिक, विधायी और प्रशासनिक सुरक्षा के जो वादे किए गए थे, वे अब तक पूरी तरह लागू नहीं हुए हैं।

इस बहस के दो प्रमुख पहलू राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (NRC) और नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA) आज भी राजनीतिक और सामाजिक तनाव का कारण बने हुए हैं। जहां सत्तारूढ़ गठबंधन CAA का बचाव करता है, वहीं विपक्ष का कहना है कि इस कानून ने पहचान और नागरिकता को लेकर लोगों की चिंताओं को और बढ़ा दिया है। कांग्रेस ने यह भी आरोप लगाया है कि चुनावों के दौरान घुसपैठ का मुद्दा ध्रुवीकरण के लिए इस्तेमाल किया जाता है। पार्टी का कहना है कि प्रशासनिक समाधान और सहमति बनाने के बजाय इस मुद्दे को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है, जिससे समुदायों के बीच विभाजन बढ़ता है।

कांग्रेस ने दोहराया है कि वह असमिया लोगों की पहचान और अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है, लेकिन इसके साथ ही यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि पूरी प्रक्रिया निष्पक्ष, पारदर्शी और राजनीतिक प्रभाव से मुक्त हो। पार्टी ने संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की बात कही है, जिससे वास्तविक चिंताओं का समाधान हो और समाज में भय या अविश्वास न फैले।

विकास बनाम विस्थापन, आखिर किसे फायदा?

असम सरकार ने हाल के वर्षों में कई विकास परियोजनाओं का दावा किया है, जिनमें बुनियादी ढांचा, औद्योगिक निवेश और व्यापारिक शिखर सम्मेलन शामिल हैं। सड़क, रेल, हवाई अड्डों और जलमार्गों में हो रहे विकास को तेज प्रगति का संकेत बताया जा रहा है। लेकिन कांग्रेस ने इस विकास के वितरण और उसके प्रभाव पर सवाल उठाए हैं। पार्टी का कहना है कि विकास कुछ चुनिंदा क्षेत्रों तक सीमित है और इसका लाभ ग्रामीण और वंचित समुदायों तक पर्याप्त रूप से नहीं पहुंच रहा है।

एक प्रमुख चिंता भूमि अधिग्रहण को लेकर है। कांग्रेस का आरोप है कि कई मामलों में स्थानीय और स्वदेशी समुदायों की जमीन बिना पर्याप्त मुआवजे और पुनर्वास के ले ली गई, जिससे लोगों को विस्थापन और आर्थिक अस्थिरता का सामना करना पड़ा।

पार्टी का यह भी कहना है कि बड़े निवेश के दावे हमेशा स्थानीय रोजगार में तब्दील नहीं होते। जहां सरकार 1.6 लाख से अधिक नौकरियां देने का दावा कर रही है, वहीं कांग्रेस ने भर्ती प्रक्रिया में पारदर्शिता की मांग की है और शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी को लेकर चिंता जताई है।

महिला कल्याण योजनाओं को लेकर भी सवाल उठाए गए हैं। कांग्रेस ने माना कि ऐसी योजनाएं जरूरी हैं, लेकिन उनका प्रभाव सीमित रहा है क्योंकि क्रियान्वयन में खामियां और असमान वितरण देखने को मिला है।

महिलाओं के खिलाफ अपराधों को लेकर भी पार्टी ने चिंता जताई है। उसका कहना है कि केवल आर्थिक सहायता पर्याप्त नहीं है, बल्कि सुरक्षा और न्याय सुनिश्चित करना भी उतना ही जरूरी है। कांग्रेस ने एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने का वादा किया है, जिसमें कल्याण, सुरक्षा और सशक्तिकरण को साथ लेकर चला जाएगा।

चाय बागान श्रमिक और बदलती राजनीतिक निष्ठाएं

असम की राजनीति में चाय बागान श्रमिक एक महत्वपूर्ण मतदाता समूह रहे हैं। कांग्रेस का कहना है कि इस समुदाय से जुड़े कई बुनियादी मुद्दे अब भी पूरी तरह हल नहीं हुए हैं, जैसे कम मजदूरी, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और शिक्षा तक सीमित पहुंच।

पार्टी ने वादा किया है कि वह मजदूरी ढांचे की समीक्षा करेगी, जीवन स्तर में सुधार लाएगी और यह सुनिश्चित करेगी कि सरकारी योजनाओं का वास्तविक लाभ जमीनी स्तर तक पहुंचे।

कांग्रेस का कहना है कि कई समुदाय आर्थिक रूप से असुरक्षित महसूस कर रहे हैं, और केवल नीतिगत घोषणाओं से भरोसा नहीं बनता। इसके लिए ठोस कार्रवाई और निरंतर संवाद जरूरी है।

क्या ध्रुवीकरण बीजेपी की राजनीतिक रणनीति है?

Photo: GettyImages

उजाड़ने की कार्रवाई, घुसपैठ, कानून-व्यवस्था और सामाजिक सुधार जैसे मुद्दों पर कांग्रेस ने लगातार ध्रुवीकरण का सवाल उठाया है। पार्टी का आरोप है कि असम की वर्तमान राजनीति में पहचान आधारित विभाजन को बढ़ावा दिया जा रहा है, बजाय समावेशी विकास के।

कांग्रेस का कहना है कि शासन का उद्देश्य समाज को जोड़ना होना चाहिए, न कि बांटना। पार्टी ने आरोप लगाया है कि मौजूदा सत्ता प्रतिष्ठान मुद्दों को इस तरह पेश करता है, जिससे धार्मिक और जातीय आधार पर सामाजिक विभाजन और गहरा होता है।

कांग्रेस ने खुद को समावेशी राजनीति के समर्थक के रूप में पेश किया है, जो सद्भाव, संवैधानिक मूल्यों और सभी समुदायों के लिए समान व्यवहार पर जोर देती है। पार्टी का मानना है कि असम में दीर्घकालिक स्थिरता और विकास तभी संभव है, जब समाज में मौजूद विभाजनों को कम किया जाए।

जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आ रहे हैं, यह बहस और भी महत्वपूर्ण होती जा रही है। बेदखली, पहचान, न्याय और विकास जैसे मुद्दे राज्य की दिशा तय करने वाले बड़े सवाल बन चुके हैं।

कांग्रेस का आरोप है कि हिमंता बिस्वा सरमाके नेतृत्व वाली सरकार असम को एक कल्याणकारी राज्य बनाने के अपने वादों को पूरा करने में विफल रही है। पार्टी लगातार यह मुद्दा उठा रही है कि राज्य में केंद्रीकरण बढ़ा है, चयनात्मक कार्रवाई हो रही है और सामाजिक ध्रुवीकरण गहरा रहा है।

'नये असम' के निर्माण का समय: कांग्रेस का विजन

भ्रष्टाचार के आरोपों, अधूरे वादों और बढ़ते सामाजिक विभाजन के बीच अब बदलाव की मांग तेज होती जा रही है। कांग्रेस ने स्पष्ट संदेश दिया है कि असम बेहतर का हकदार है और अब "नया असम" बनाने का समय आ गया है, जो न्याय, विकास और एकता पर आधारित हो।

पिछले कुछ महीनों में कांग्रेस ने मौजूदा सरकार की नीतियों और कामकाज की तथ्य आधारित आलोचना को और तेज किया है। एक महत्वपूर्ण राजनीतिक कदम के तहत पार्टी ने 20 बिंदुओं का आरोप पत्र जारी किया, जिसमें वर्तमान सरकार पर व्यापक भ्रष्टाचार और कुप्रबंधन के आरोप लगाए गए।

पार्टी का कहना है कि ये केवल राजनीतिक आरोप नहीं हैं, बल्कि कई घटनाओं, विवादों और प्रशासनिक विफलताओं से जुड़ी एक व्यापक तस्वीर है, जिसने लोगों के बीच चिंता पैदा की है।

पुराने घोटालों से लेकर हाल की प्रशासनिक अनियमितताओं तक, सत्तारूढ़ नेतृत्व की विश्वसनीयता पर लगातार सवाल उठते रहे हैं। सारधा चिट फंड जैसे मामलों से जुड़े आरोपों का जिक्र करते हुए कांग्रेस नेताओं का कहना है कि ये घटनाएं साफ-सुथरे शासन के दावों पर सवाल खड़े करती हैं।

जमीनी स्तर पर भी कई घटनाओं ने असंतोष को बढ़ाया है। 2025 में अवैध कोयला खनन की घटना, जिसमें प्रतिबंधित रैट-होल माइनिंग का खुलासा हुआ, ने प्रशासनिक जवाबदेही पर गंभीर सवाल खड़े किए।

कांग्रेस का कहना है कि ये घटनाएं दिखाती हैं कि बड़े-बड़े दावों के बावजूद कानून लागू करने में कमजोरियां बनी हुई हैं और प्राथमिकताएं सही दिशा में नहीं हैं।

इसके साथ ही यह धारणा भी मजबूत हो रही है

Photo: GettyImages

कि वर्तमान सरकार ने प्रदर्शन के बजाय ध्रुवीकरण पर ज्यादा जोर दिया है। राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि पहचान आधारित बयानबाजी और विभाजनकारी मुद्दों का इस्तेमाल बेरोजगारी, आर्थिक ठहराव और सामाजिक कल्याण जैसी समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए किया गया है।

कांग्रेस ने इन मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हुए विकास, सामाजिक सद्भाव और समावेशी प्रगति को प्राथमिकता देने की बात कही है।

अधूरे वादों का मुद्दा भी चुनावी चर्चा के केंद्र में है। कांग्रेस नेताओं ने आरोप लगाया है कि पिछले एक दशक में विकास से जुड़े कई वादे पूरे नहीं किए गए। रोजगार, बुनियादी ढांचा, किसानों की स्थिति और युवाओं के अवसर जैसे मुद्दों पर वादों और वास्तविकता के बीच बड़ा अंतर बना हुआ है।

कांग्रेस ने जमीनी स्तर पर अभियान चलाकर लोगों के बीच अपनी बात पहुंचाई है और असम के पुनर्निर्माण का रोडमैप प्रस्तुत किया है।

"नया असम" का विजन केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक व्यापक योजना है, जिसका उद्देश्य शासन में भरोसा बहाल करना और लोगों की वास्तविक समस्याओं का समाधान करना है। इसमें युवाओं के लिए स्थायी रोजगार के अवसर पैदा करना, भूमि और पहचान से जुड़े अधिकारों की रक्षा करना, स्वास्थ्य और शिक्षा को मजबूत करना और महिलाओं व वंचित समुदायों को सशक्त बनाना शामिल है।

इसके साथ ही पारदर्शी शासन, जवाबदेही और कानून के राज को अनिवार्य सिद्धांत के रूप में रखा गया है।

कांग्रेस नेताओं ने बार-बार कहा है कि असम का भविष्य डर, विभाजन या केवल नारों पर नहीं बन सकता। इसके लिए ऐसी सरकार की जरूरत है जो लोगों की सुने, वादों को पूरा करे और समाज को जोड़कर आगे बढ़ाए।

जैसे-जैसे मतदाता अपना निर्णय लेने की तैयारी कर रहे हैं, राजनीतिक परिदृश्य में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। एक ओर वह सरकार है, जिस पर कई आरोप और आलोचनाएं हैं, और दूसरी ओर कांग्रेस है, जो "नया असम" के लिए जवाबदेही, नवीनीकरण और समावेशी विकास का वादा कर रही है।

संडे नवजीवन
रविवार, 29 मार्च, 2026 I www.navjivanindia.com
Published Date 29 March, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

आदिवासियों के बीच किताबें

केरला के इडुक्की जिले के जंगलों में 86 साल के पी.वी. चिन्नतंबी अनोखी लाइब्रेरी चलाते हैं। इसमें करीब 2,000 कालजयी साहित्यिक किताबें हैं

पी. साईनाथ

वह बुजुर्ग कुर्सी से उठे, तो आंखों में आंसू भर आए। तिरुवनंतपुरम में एक सभा में स्कूली बच्चों समेत सभी ने ताली बजाकर उनका स्वागत किया। पूरी जिंदगी में उन्होंने इतना मान-सम्मान कभी नहीं देखा था। इस साल 9 जनवरी को केरला विधानसभा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले (केएलआईबीएफ) के चौथे आयोजन में जुटी भीड़ उनका काम देखकर दंग रह गई। सभी अचरज में थे कि एक आदमी अपनी जेब से पैसा लगाता है, और अपने उपेक्षित आदिवासी समाज के लिए लाइब्रेरी चलाता है। लाइब्रेरी इडुक्की जिले के इडामलकुड़ी के जंगल में है। इडामलकुड़ी राज्य का शायद सबसे कम पढ़ा-लिखा इलाका है।

पी.वी. चिन्नतंबी जल्द ही 87 साल के हो जाएंगे। उनके द्वारा शुरू की गई लाइब्रेरी 15 साल बाद भी चल रही है। हमने 2014 में जो लाइब्रेरी देखी थी, जंगली हाथी उसके ढांचे को गिरा चुके हैं, लेकिन लाइब्रेरी आज भी है।

"मुझे इसका अंदाजा था," चिन्नतंबी ने केएलआईबीएफ में हमसे कहा। उनके सम्मान में आयोजित सत्र में मेरी और के.ए. शाजी (जो उनके दुभाषिए का भी काम कर रहे थे) की बातचीत हो रही थी। उन्होंने पहली मुलाकात में भी कहा था कि जंगल और मौसमों में बदलाव के चलते हाथियों पर असर पड़ा है।

"काफी दिनों से मैं इस समस्या को झेल रहा था। हाथी उग्र होते जा रहे थे। हमें शक था कि कहीं एक दिन वे सब हमारी लाइब्रेरी पर हमला न कर दें। आखिर में मैंने यही सोचा कि इसे यहां से हटा दें और उसके साथ हमने अपना घर भी हटा दिया। लाइब्रेरी से मिलने वाला ज्ञान बचाना सबसे जरूरी था।"

फिर वह लाइब्रेरी को कुछ किमी दूर ले गए, लेकिन तब भी वह जगह इडामलकुड़ी के जंगल के इलाके में पड़ती थी। वह बताते हैं, "जिस हफ्ते हम हटे, उसी हफ्ते लंबे दांत वाले हाथियों ने पुराने ढांचे को तहस-नहस कर दिया।" वह कहते हैं, "हम तो सारी किताबें पहले ही हटा चुके थे।" वह समझते थे कि बड़े जानवरों के चाल-चलन बदल गए हैं। इस सब के बाद भी उनके मन में हाथियों के लिए कोई कड़वाहट नहीं है।

वह कहते हैं, "मैं मुलकुधारा में चला गया और नए सिरे से सब शुरू किया। वहां लाइब्रेरी चलाने के लिए खुद समेत 7 लोगों की कमिटी बनाई। आखिर मैं हमेशा तो जिंदा रहूंगा नहीं।" वह गंभीरता से लाइब्रेरी शुरू करने के मकसद के बारे में दर्शकों को बताते हैं, "ज्ञान, स्कूली शिक्षा से ज्यादा ताकतवर होता है, इसलिए लाइब्रेरी बनाई।"

चिन्नतंबी बहुत गरीब आदिवासी परिवार से आते हैं। उनके पास दो एकड़ जमीन है, पर उसमें खास कुछ उगता नहीं है। उनका परिवार भी काफी बड़ा है। छठीं में उनकी पढ़ाई छूट गई थी और वह परिवार के लिए कमाने निकल गए थे। आज वही मुतुवन आदिवासियों के लिए जंगल में शानदार लाइब्रेरी चला रहे हैं।

"इरंपुपालम में हम इडुक्की के पहले आदिवासी स्कूल में पढ़े। कुछ बच्चे चौथी तक पढ़े। हम जैसे कुछ छठीं तक पढ़ गए। लेकिन मैं तो यही मानता हूं कि लोग किसी और चीज की तुलना में किताब पढ़कर ज्यादा सीखते हैं।"

"अब बच्चे लाइब्रेरी में आ रहे हैं," उन्होंने हमें 2014 में बताया था। और यह बात साबित भी कर दी। उनके रजिस्टर से पता चलता है कि 160 किताबों में से चौथाई हमेशा लोगों के बीच घूमती रहती थीं। जंगल के वीराने में फलता-फूलता एक पुस्तकालय, लेख जब 2014 में हमने पहली बार छापा था, उनके पास 160 किताबें थीं। उनके बारे में लिखी इस कहानी का असर न सिर्फ केरला, बल्कि बाहर के देशों में भी हुआ। अमेरिका और ब्रिटेन की लाइब्रेरी में काम करने वाले लोग उनकी कहानी को अपने यहां छापने की अनुमति चाहते थे। लाइब्रेरी के लिए किताबें भी दान करना चाहते थे। लेकिन केरला के लोग बाजी मार गए। कुछ ही महीनों के भीतर उनके पास 2,000 से ज्यादा किताबें जमा हो गईं। चार नौजवान किताब रखने वाली अलमारी अपने कंधों पर उठाकर 18 किलोमीटर जंगल पार करके पहुंचे। उनमें से एक पत्रकार थे स्वर्गीय आई.वी. बाबू, जो 2014 में चिन्नतंबी से पहली मुलाकात के वक्त साथ थे। चिन्नतंबी यह सब देख खुशी के मारे फूले नहीं समाए। लेकिन फिर बोले, "अब और किताबें मत भेजना, रखने की जगह नहीं बची है।"

केएलआईबीएफ में हमने मुरली 'माश' (मास्टर या शिक्षक) को मंच पर बुलाया। चिन्नतंबी के यह गुरु उनसे 31 साल छोटे हैं। 'माश' मलई अरायण आदिवासी समुदाय से हैं, जो पढ़ाई-लिखाई में दूसरी जनजातियों से आगे है। इडामलकुड़ी - जहां ईरुप्पुकल्लकुड़ी में लाइब्रेरी सबसे पहले शुरू हुई - की 28 बस्तियों की कुल आबादी 2,500 से भी कम है। दुनिया भर में कुल इतने ही मुतुवन आदिवासी हैं।

चिन्नतंबी बताते हैं कि मुरली माश एक साल पहले आए थे। वह आदिवासियों के अकेले मास्टर वाले स्कूल में पढ़ाने आए थे। "पता चला कि मुझे सरकार और दूसरे लोगों से किताबें मिल रही थीं," माश कहते हैं। उसी समय एक बड़ी लाइब्रेरी की बात दिमाग में आई थी। इलाके के लोग इसे स्वीकार करें, इसके लिए हमें "मुतुवन आदिवासी समुदाय के एक सदस्य की जरूरत थी।"

उस समय चिन्नतंबी सामने आए, और जंगल में इस किताबघर का जन्म हुआ। चिन्नतंबी को एक ही पछतावा होता है। साल 2014 की यात्रा में, हमने वहां 161वीं किताब तैयार होते देखी थी। वह उनकी आत्मकथा थी। "वह पूरी हुई कि नहीं?" हमने उनसे पूछा। "नहीं," उन्होंने बताया। "मैंने करीब एक तिहाई हिस्सा लिख लिया था, जब तिरुवनंतपुरम का एक पत्रकार आया और मेरा लिखा लेता गया। उसने किताब को पूरा करने में मदद करने और इसके लिए प्रकाशक खोजने का वादा किया था। लेकिन वह दोबारा नजर नहीं आया।" उनको जो मान-सम्मान मिला, वह केएलआईबीएफ की खास व्यवस्था से संभव हुआ। केरला ऐसा इकलौता राज्य है, जिसकी विधानसभा साहित्यिक पुस्तक महोत्सव कराती है। सभी जिलों, यहां तक कि कुछ तालुकाओं में भी इनके साहित्य उत्सव आयोजित होते हैं। सभी 140 विधायकों को अपने निर्वाचन क्षेत्र के लिए किताबें खरीदने के लिए 3 लाख रुपये मिलते हैं। लेकिन शर्त होती है कि उन्हें पैसा यहीं खर्च करना होता है। इस उत्सव में देश भर से 170 प्रकाशक आए थे और करीब 240 स्टॉल लगे थे। चौंकाने वाली बात है कि इस महोत्सव का कारोबार मात्र एक हफ्ते में 10 करोड़ पार कर जाता है। इस दौरान विधानसभा परिसर के हर दरवाजे जनता के लिए खोल दिए जाते हैं। पूरे सात दिन चलने वाले इस महोत्सव में लोग आराम से अंदर घूम सकते हैं और सुरक्षा जांच के ज्यादा झमेले भी नहीं होते हैं।

सत्र के अंत में हमने वहां मौजूद दर्शकों और पत्रकारों से गुहार लगाई कि चिन्नतंबी की अधूरी पांडुलिपि खोजकर वापस लाने में मदद करें। हमने उस अनजान रिपोर्टर से भी मदद की गुहार लगाई। चिन्नतंबी ने भी कहा कि अगर उन्हें मदद मिली, तो "यह काम फिर से खुशी-खुशी करेंगे।" केरला तो केरला है, इसलिए सत्र खत्म होते-होते मदद के लिए हाथ बढ़ाने वालों की लाइन लग गई।

हमें उम्मीद है एक दिन यह कहानी पूरी होगी और छपेगी। इडामलकुड़ी और उसके हाथियों की कहानी। आम आदमी के भीतर पढ़ाई-लिखाई और ज्ञान की लालसा की कहानी। केरला की सबसे छोटी लाइब्रेरी की कहानी, लेकिन शायद दुनिया के सबसे महान और सज्जन लाइब्रेरियन की कहानी।

मुतुवन आदिवासियों के लिए पुस्तकालय चलाने वाले पी.वी. चिन्नतंबी

12 साल पहले हुई मुलाकात

यह एक वीरान छोटी-सी चाय की दुकान है, जिसकी दीवारें मिट्टी की बनी हुई हैं। सामने की ओर एक सफेद कागज टंका है, जिस पर हाथ से लिखा हुआ है:

- अक्षरा आर्ट्स एवं स्पोर्ट्स
- पुस्तकालय
- ईरुप्पुकल्लकुड़ी
- इडामलकुड़ी

इडुक्की के इस वीरान जंगल में पुस्तकालय? भारत के सबसे शिक्षित राज्य केरल की यह अल्प शिक्षित जगह है। राज्य की सबसे पहले चुनी हुई आदिवासी ग्रामीण परिषद के इस गांव में सिर्फ 25 परिवार रहते हैं। इनके अलावा यदि किसी को यहां से किताब लेनी हो, तो उन्हें घने जंगलों के बीच से पैदल यात्रा करनी पड़ेगी। क्या कोई सचमुच इतनी दूर आना चाहेगा?

चाय विक्रेता, स्पोर्ट्स क्लब आयोजक एवं पुस्तकालयाध्यक्ष चिन्नतंबी कहते हैं कि लोग आते हैं। उनके घर तक पहुंचने के बाद हमने पाया कि उनकी पत्नी काम के लिए बाहर गई हुई हैं। उनका परिवार भी मुतुवन आदिवासी समुदाय से ताल्लुक रखता है। वह मुझे उस छोटी सी संरचना के भीतर ले गए. एक घुप्प अंधेरे कोने से, वह दो बोरियां ले आए। इनमें 160 किताबें हैं। यही उनकी पूरी सूची है। वह उनको दरी पर बिछाते हैं, जैसा कि वह हर रोज पुस्तकालय के लिए तय समयावधि में करते हैं।

इनमें से हर एक किताब साहित्यिक थी। कोई भी रोमांचक, बेस्टसेलर या लोकलुभावन साहित्य की पुस्तक नहीं। एक तमिल महाकाव्य 'सिलपट्टीकरम' का मलयालम अनुवाद है। वैकम मुहम्मद बशीर, एम.टी.वासुदेवन नायर, कमला दास आदि भी शामिल हैं। एम.मुकुन्दन, ललिताम्बिका अनन्तरजनम आदि की किताबें थीं। महात्मा गांधी के साहित्य के अलावा प्रसिद्ध उग्र कट्टरपंथी तोपिल बसी की 'यू मेड मी अ कम्युनिस्ट' जैसी किताबें भी। पुस्तकालय का सदस्यता शुल्क 25 रुपये और मासिक शुल्क 2 रुपये है। किताबें ले जाने वालों के नाम, लौटाने की तारीख रजिस्टर में दर्ज की जाती है। हमारे समूह में ज्यादातर का जीवनयापन लेखनी से चलता था, और इस पुस्तकालय ने हमारे अंहकार की भी हवा निकाल दी। केरल प्रेस अकादमी के पत्रकारिता के तीन युवा छात्रों में से एक, विष्णु एस. ने उनमें से 'सबसे अलग' किताब ढूंढी। यह नोटबुक थी, जिसके बहुत से पन्नों में हाथों की लिखावट थी। इसका कोई शीर्षक तो नहीं था, लेकिन यह चिन्नतंबी की आत्मकथा थी।

चिन्नतंबी बताते हैं कि उन्हें पुस्तकालय की स्थापना के लिए मुरली 'माश' (मास्टर या टीचर) ने प्रेरित किया। मुरली 'माश' आदर्श व्यक्तित्व एवं शिक्षक माने जाते रहे हैं। चिन्नतंबी का मानना है कि उन्होंने कोई विशेष काम नहीं किया है। अपनी विनम्रता में वह स्वीकार भले न करें, लेकिन चिन्नतंबी बहुत बड़ा काम कर रहे हैं।

इडामलकुड़ी उन 28 गांवों में से एक है जिसमें 2,500 से कम लोग रहते हैं। पूरे विश्व में मुतुवन लोगों की तकरीबन यही जनसंख्या है। मात्र 100 लोग ही ईरुप्पुकल्लकुड़ी में रहते हैं। चिन्नतंबी यहीं रहकर इस वीराने में पुस्तकालय चला रहे हैं। वह इसे सक्रिय रखते हुए वंचित समुदाय से ताल्लुक रखने वाले अपने ग्राहकों को पढ़ने का मौका दे रहे हैं और उनकी साहित्यिक भूख मिटा रहे हैं। साथ ही, उनको चाय, नमकीन एवं दियासलाई की आपूर्ति भी करते हैं।

वैसे तो हमारा समूह बहुत शोरगुल करता है, परंतु इस भेंट ने हम सभी को बहुत प्रभावित किया एवं शांत कर दिया। हमारी नजर अब लंबे और कठिन रास्ते पर थी। हमारा मन-मस्तिष्क पी.वी. चिन्नतंबी के इर्द-गिर्द ही घूम रहा था। ■

अनुवाद: देवेश और सिद्धार्थ चक्रवर्ती। साभार: ruralindiaonline.org

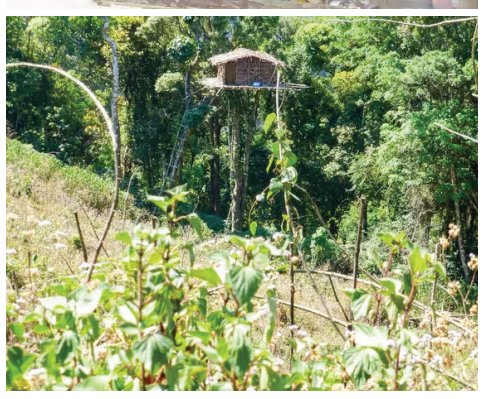

इडुक्की में चिन्नतबी की चाय की दुकान, स्कूल मास्टर मुरली माश और आदिवासी समुदाय के मलई अरायण (ऊपर)। हाथियों पर निगरानी को मचान एवं केरला के केएलआईबीएफ के कार्यक्रम पी. साईनाथ, के.ए. शाजी और अन्य

चिन्नतंबी जल्द ही 87 साल के हो जाएंगे। उनके द्वारा शुरू की गई लाइब्रेरी 15 साल से चल रही है। चिन्नतंबी का मानना है कि उन्होंने कोई विशेष काम नहीं किया है। अपनी विनम्रता में वह स्वीकार भले न करें, लेकिन चिन्नतंबी बहुत बड़ा काम कर रहे हैं

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर
मुंबई के हृदयस्थल में,
बीकेसी से सटे,
एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तम:

- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051